आँखों की थाह

तथा

अन्य कहानियाँ

राय कृष्णदास

लखनऊ
हिन्दुस्तानी बुकडिपो

मू० { बिना जिल्द ॥)
{ जिल्द सहित १)

प्रकाशक

पं० विष्णुनारायण भार्गव

हिन्दुस्तानी बुकडिपो लखनऊ

सं० १९९८

मुद्रक

पं० भृगुराज भार्गव

अवध-प्रिंटिंग-वर्क्स

लखनऊ

भाई

श्रीप्रकाश को

वक्तव्य

दस वर्ष के लंबे अर्से के बाद इन कहानियों को लेकर हिंदी-संसार के सामने उपस्थित हो रहा हूँ। इस बीच हमारा कहानी-साहित्य जिस विक्रम के साथ उन्नत हुआ है, उसे देखकर आश्चर्य-चकित और आनंद-मुग्ध हो जाना पडता है। हमारे नई पौध के, कहानीकारों ने इधर ऐसी-ऐसी कहानियाँ लिखी है, जिनका संसार भर की अच्छी से अच्छी कहानियों में निश्चित स्थान है। इसी से अपने कहानी साहित्य के समुज्वल भविष्य की सगौरव कल्पना की जा सकती है। मुझे तो ऐसा लगता है कि पहले के लेखकों को अब कलम रख देना चाहिए।

ऐसी परिस्थिति में, वर्त्तमान ढिठाई के लिए भाई मैथिलीशरण की ये पंक्तियाँ ही संबल हैं—

जय-देवमंदिर-देहली

सम-भाव से जिस पर चढी—

नृप-हेम-मुद्रा और रंक-वराटिका !'

—लेखक

फाल्गुन शुक्ल ७, १९१९७

शुद्धि-पत्र

प्रेस की भूल से पुस्तक मे कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं, पाठको से निवेदन है कि पुस्तक पढ़ना प्रारम्भ करने से प्रथम इन शुद्धियों को बना ले।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	१०	था,	था और
८	६	व	वा
६	३	है	ही
६०	१०	घीझ	खीझ
६६	६	कृष्णमुरारी	कृष्णमुरारी के सग
७०	११	खुल न सकी	खुल सकी
८३	८	कहाँ	कहीं
८६	४	निश्चित	निश्चिन्त
१००	२	वहाँ	वहीं

सूची

आँखों की थाह

'... ...*तुम्हारी भाभी तुम्हें ऐसी प्यारी हैं तभी तो भेज रहा हूँ। किंतु बचा, याद रखना बहुत महँगी पड़ेंगी।'*

(१)

उन आँखों की थाह लेना क्या किसी के लिये सभव था ? उनकी चमकदार और बहुत ही गहरी-काली पुतलियों से टकराकर पैनी-से-पैनी दृष्टि को भी निराश लौटना पडता। कोई जान ही न पाता कि प्रोफेसर की पत्नी के मन मे क्या है। उलटे स्वय थाह लेने का इच्छुक चकरा उठता, मानो उसका मस्तक किसी पोढी भीत से टकरा गया हो। किंतु जहाँ आँखों का यह हाल था, वहाँ उस स्त्री के खुले स्वभाव से कभी किसी को आशका ही न हो सकती थी कि पुतलियों की उस अभेद्य कालिमा के भीतर कोई रहस्य छिपा होगा।

आश्चर्य तो इस बात का है कि जहाँ सुखमा और उसके पति

प्रोफेसर देवेंद्रनाथ का वैवाहिक जीवन हर तरह सफल दीख पड़ता था, वहाँ जिन दिनों की बात हम कह रहे हैं, उन दिनो सुखमा से जो भी कुछ देर बातें करता या उसे देखता, वह इस बात का अनुभव किए बिना नही रह सकता कि उसके चेहरे पर कभी-कभी विषाद की एक तीव्र रेखा दौड़ जाया करती। इतना ही नहीं, उसके आकर्षक वार्तालाप मे भी एक अदृश्य आह का अनुभव किया जा सकता था।

देवेंद्रनाथ और सुखमा का विवाह काफी दिनो के सहाध्ययन और घनिष्ठ मैत्री के बाद हुआ था। कालेज के दिनो मे जब लोग उन दोनो को इलाहाबाद की सिविल लाइनवाली लबी-लबी सड़को पर संग टहलते देखते, तो सभी एक मुँह से कहा करते कि सहपाठी और सहपाठिनी मे ऐसी मित्रता भी संभव है, जिसमे 'सेक्स' की बू-बास न हो। उन दोनों ने स्वयं ही न जाना कि किस दिन उनका परिचय मित्रता मे, फिर प्रेम मे, फिर आत्मीयता मे परिणत हो गया। हाँ, दुनिया ने और स्वय उन्होने भी एक दिन यह अवश्य देखा कि इस विकास के परिणामस्वरूप वे दोनों विवाह-बंधन मे बँधकर एक हो गए।

बंधन कहने से हमारा यह तात्पर्य नही कि विवाह उनके लिये बंधन-स्वरूप था। बात इसके बिलकुल विपरीत थी और इस जोड़े का सौमनस्य देखकर कितनों ही को डाह होता था। इस प्रकार इस दो प्राणियोंवाले कुटुब का एक अलग ससार था जिसमे नित्य-उत्सव और नित्य-वसत ओतप्रोत था।

प्रोफेसर साहब का रहन-सहन मिला-जुला देशी-विदेशी था, जैसा कि आजकल के अधिकांश प्रोफ़ेसरों का होता है। उनकी संध्याएँ इष्ट-मित्रों

के यहाँ जाने-बुलाने, टेनिस वा सिनेमा मे बीतती और सुखमा का इनमे सहयोग रहता। सुखमा का व्यक्तित्व इतना मधुर और आकर्षक था कि अनायास लोग मुग्ध हो जाते। किंतु जहाँ यह था, वहाँ उसमे एक मर्यादा भी थी। देवेन्द्रनाथ का मित्र-वर्ग भली भाँति जानता कि निश्चित सीमा के आगे वह एक पग भी नही बढ सकता, सुखमा भले ही उसके प्रति कितनी ही उन्मुक्त क्यो न हो।

देवेंद्रनाथ और सुखमा ने एक ही विषय की डिग्रियाँ ली थी। कालेज के दिनो मे सुखमा बहुत ही अध्ययन और मननशील थी, और यदि प्राफेसर साहब के मन मे यह आशा थी कि वैवाहिक जीवन मे सुखमा उनके डाक्टरेट के लिये खोज मे हाथ बॅटावेगी तो वह सर्वथा स्वाभाविक थी। किंतु कौटुम्बिक जीवन के आरभ होते ही सुखमा की वह अध्ययन-मनन-शीलता तिरोहित हो गई और रज-गज सध्याओ के बाद जब देवेंद्रनाथ अपने पठनागार मे बैठकर, अपने खोज के काम मे प्रवृत्त होते तो सुखमा एक मिनट के लिये भी उनका साथ न देती, यद्यपि उसे ड्राइगरूम मे अकेले बैठना बहुत ही खलता और रेडियो, इसराज और व्यस्त-शब्द-पहेलियाँ उसके लिये तनिक भी मनोरजन की सामग्री न बन पाती। यहाँ तक कि कुछ ही देर मे अँगडाई और जभाई लेती हुई वह खाट पर जा पडती।

उधर देवेंद्रनाथ भी, यद्यपि वह किसी भी रात बारह से पहले न सोते और कभी-कभी तो दो बज जाता, अपने खोज के काम मे भरमा ही करते और उन्हे ऐसा लगता—वास्तव मे बात भी ऐसी ही थी—कि वे किसी निश्चित परिणाम पर पहुॅच ही नहीं पाते। दोनो ही एक दूसरे

की सन्निकटता के अभाव से छटपटाते रहते, किंतु दोनो ही अपने जीवन का क्रम बदलने के लिये तैयार न जान पडते। थोडे दिनो मे यह अभाव एक नित्य की बात बन गया और दोनो का सूनापन कुठित हो चला। अब उन लोगो मे इस विषय की बातचीत भी न होती क्योंकि उनके जीवन के शेष घटे काफी सुखी, एव भरे पूरे बीतते और इसी सफलता के कारण मानो वे अपने उस अभाव, को अभाव मानने के लिये तैयार न थे। अतएव इतना हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि सुखमा के मुखडे पर वेदना की जिस तीव्र रेखा की वा उसकी बातचीत मे जिस अदृश्य आह की चर्चा हम ऊपर कर आए हैं, उसका इस अभाव से कोई सबध न था। वस्तुतः जिन दिनो इस अभाव का आविर्भाव हुआ था, वह सुखमा को सचमुच खलता था उन दिनो तो उसकी बात वा उसकी आकृति मे विषाद की झलक तक न थी। विषाद के बदले पति पर प्रत्यक्ष और परोक्ष क्रोध द्वारा वह अपने हृदय के फफोले फोड लिया करती।

(२)

इस विषाद का कारण जानने के लिये, जिस समय की चर्चा की जा रही है, उसके थोडा पीछे मुडना पडेगा।

सुखमा को प्रतिदिन संध्या बीतने पर ऊबना पडता हो, सो नहीं। सप्ताह मे एकाध दिन ऐसे मित्र वा उनकी स्त्रियाँ आ जाती जिनके साथ घटे-दो-घटे गपशप मे बीत जाते। कभी-कभी यह दपती मित्रों को भोजन के लिये आमत्रित करती। उस दिन तो देवेंद्रनाथ भी अपना खोज का काम छोडकर भोजन के उपरांत गोल-कमरे में बैठकर वार्ता-विनोद किया करते थे।

इस बीच में प्रोफेसर के एक पुराने सहपाठी उनके नगर मे डिप्टी कलक्टर होकर आए। इन श्रीकात का देवेंद्रनाथ से स्कूल की छठीं कक्षा से लेकर कालेज के पहले दो वर्षों तक निरतर साथ था। काफी घनिष्ठता थी, भाईचारा समझिए। इसके बाद श्रीकांत दूसरे कालेज मे चले गए। वहाँ से डिग्री लेकर वह डिप्टी कलक्टर हो गए और धीरे-धीरे घनिष्ठता पर समय तथा दूरी का पटाक्षेप हो गया। किन्तु उनके यहाँ आते ही पुराना भाईचारा ज्यो का त्यों स्थापित हो गया, बल्कि निखर उठा।

डिप्टी साहब अवस्था मे देवेंद्रनाथ से कुछ छोटे थे, अतएव सुखमा उनकी भाभी हुई। देवर-भाभी का यह नाता, भाई-भाई के नाते से भी अनुदिन बढता जा रहा था, क्योंकि डिप्टी साहब कचहरी, और हाकिमों के क्लब से छुट्टी पाकर शाम को यहीं आ डटते और कहीं ग्यारह-बारह बजे रात नौकरो को गालियाँ देने तथा स्त्री को पीटने के लिये घर लौटते।

उनका जितना समय प्रोफेसर साहब के यहाँ बीतता उसमे देवर-भौजाई घुल-घुलकर बाते किया करते। कभी दोनों ठठाकर हँसते, कभी बहस करते, कभी आनंद से उत्तेजित होकर बडी उमग से ऊँचे स्वर मे बोलने लगते और कभी झगड उठते। देवेंद्रनाथ कभी-कभी एकाध मिनट के लिये उन लोगो के पास आ जाते, प्रायः यही कहने के लिये—'अरे श्री! तुम अभी तक बैठे ही हो?' वा—'तुम लोगों ने तो बडा हल्ला मचा रक्खा है।'

प्रोफेसर साहब का बेयरा बाहर बरामदे मे बैठा-बैठा कुढा करता। उसे प्याले पर प्याला चाय पहुँचानी पडती। बीच-बीच में जो

अवकाश मिलता, उसमे वह तथा प्रोफेसर साहब का खाना बनानेवाला इस अतरगता की कटु आलोचना किया करते और मनमाना अर्थ लगाते रहते और ऊँघा करते।

सात महीने डिप्टी साहब वहॉ रहे और इस बीच देवर भौजाई की घनिष्ठता इतनी बढी कि वह नौकर चाकरो की ही नही, नगर भर की आलोचना और डिप्टी साहब के यहॉ गृह-कलह का विषय ही नही बन गई, सभवतः उनकी बदली का कारण भी हुई। सिनेमा, थियेटर, उत्सव, पार्टी, जहॉ देखिए दोनो एक साथ। कभी-कभी वे दोनो इधर-उधर सैल व गोठ करने भी जाया करते, किंतु इन अवसरो पर देवेंद्रनाथ को खीच ले जाना वे न भूलते।

ऐसा नही कि नगर और नौकरो की कानाफूसी की गूँज देवेंद्रनाथ के कानो तक न पहुँची हो। किंतु वे श्रीकात और सुखमा की घनिष्ठता मे कोई अवांछनीयता न पाते, फलतः वह ऐसी वेतुकी बात की तनिक भी परवाह न करते, उल्टे कभी-कभी दोनो मित्र और सुखमा इसकी हॅसी उडाया करते।

किंतु, बिदा के दिन श्रीकात सुखमा से यह कहे बिना न रह सके—'भाभी, अच्छा ही हुआ जो यहॉ से जा रहा हूॅ। मुझे अपनी तो कोई चिता न थी किंतु इस चिरॉध मे तुम्हारा नाम भी बसा था, यह मेरे लिए असह्य था।'

'तुम्हे तो मै पुरुष समझा करता था, किंतु आज पता चला कि तुम कुछ और हो, श्री!'—देवेंद्रनाथ ने हसी उडाते हुए कहा—'भला ऐसी बातो पर कोई कान देता है!?'

'कान तो हमारे बड़े साहब (कलक्टर) तक ने दिया, फिर औरो की क्या गिनती।'—श्रीकात ने, मुँह बिचकाकर कहा।

'आख़िर तो डिप्टी है न? बड़े साहब जो कुछ करे वही तुम्हारे लिये सब कुछ। यही तो तुम लोगो की इनफिरियारटी कप्लेक्स है।

'वे लोग समझते हैं कि भारतीयो मे चारित्र्य कहाँ? इसी से जो मन मे आता है, राय बना लेते हैं।'—देवेंद्र ने कहा।

'जी, क्यो हम लोग ऐसी बातों मे माथापच्ची करे'—सुखमा ने दृढतापूर्वक कहा और प्रस्ताव किया—'अभी खाने मे देर है, तब तक हम लोग कही घूमघाम आवे।'

सुखमा के इस प्रस्ताव को दोनो मित्रो ने स्वीकार किया, और मोटर मे एक लंबा चक्कर लगाकर लौट के इन लोगो ने भोजन किया, फिर कुछ देर गपशप करते रहे। श्रीकात की गाड़ी रात साढे ग्यारह बजे जाती थी। उसमे उन्हे सवार कराके भारी हृदय से दपती घर लौट आए।

(३)

दो चार दिन प्रोफेसर साहब को श्रीकात का बिछोह खला, उपरात अपने दैनिक कार्यक्रम मे वह उन्हें भूल-सा गए। जब तक याद बनी थी तब तक वह सुखमा से अकसर उनकी चर्चा किया करते—'यह श्रीकात के आने का समय था', 'श्रीकांत होते तो इस समय ऐसा उत्तर देते', 'आज श्रीकात होते तो तुम्हे सिनेमा के नए प्रोग्राम मे ले गए होते', इत्यादि। किंतु विस्मृति के साथ-साथ इस तरह की बातो का सिलसिला भी छीजता गया। किंतु यह परिस्थिति सुखमा को खलने

लगी। उसकी इच्छा होती कि वैसी बातो का सिलसिला बराबर बना रहे। अभाव मे वह अकेली ही बीते दिनो की बाते सोचा करती, सदैव अतीत की सृष्टि मे विचरण किया करती, कभी कल्पना के दृश्य बनाया करती, जिसमें मुख्य अभिनेता होते श्रीकात—वह श्रीकात की प्रतीक्षा मे कपडे पहने बैठी है, समय बीत रहा है किंतु अभी तक वह आए नही, प्रत्याशा मे उसका हृदय धडक रहा है और उनके न आने की आशका से जी छोटा हुआ जा रहा है कि डिप्टी साहब धडधडाते हुए आ पहुँचते हैं। अपने उन्मुक्त सहास हार्दिक वार्तालाप से क्षणभर मे सारा वातावरण सजीव कर देते हैं, फिर वे सिनेमा देखने जाते हैं, वहाँ मनोरजन के दो घटे बिताकर वे लौटते हैं और तब देवेंद्रनाथ के साथ बैठकर घटो सिनेमा की आलोचना तथा जाने कहाँ-कहाँ की बाते करते रहते हैं. . . . ...इत्यादि।

इस तरह के दिवा-स्वप्न का ताँता क्रमशः बढ़ चला। सुखमा को इसमे बडा सुख मिलने लगा, यद्यपि भीतर-भीतर कभी-कभी ऐसी प्रक्रिया भी चलने लगती कि इनसे पिंड छूटता तो अच्छा था। किंतु वह करती तो क्या? रेडियो, फोनोग्राफ, इसराज, नावेल, कहानी, सिनेमा, शब्द-पहेली, घूमने-घामने, सभी से तो उसका मन उचाट रहने लगा। इष्ट-मित्र आते तो उनसे वह पहले की तरह आकर्षक और मनोरंजक बातचीत कर लेती, किंतु बीच-बीच मे वेदना की एक तीव्र रेखा उसके मुखमडल पर दौड जाया करती और उसकी बातो मे एक अदृश्य आह का अनुभव होने लगता, जैसा कि हमने आरभ मे देखा है।

उसने चाहा कि अपने पति के खोज-कार्य मे हाथ बँटावे। कई दिन

वह उनके साथ काम करने बैठी भी, किंतु उसके किए कुछ न हो सका। यदि उसने कुछ किया तो यही कि वह खोज की विचारधारा मे बाधक हुई। जो गुत्थियाँ उससे सहज ही सुलझ जानी चाहिए थी, उनमे भी वह अटकने-भटकने और ठोकर खाने लगी। देवेंद्रनाथ का समय उसे सँभालने ही मे बीतने लगा। वह काम करते तो क्या ?

सुखमा ने कई बार चाहा कि अपनी अवस्था देवेंद्रनाथ से खोल दे और मन का बोझ हलका करे, किंतु साहस न हुआ। ऐसा जान पडा कि उसने अपने हृदय की जो दशा बना रक्खी है, उसके लिये वह अपने पति के प्रति दोषी है। साराश यह कि वह घुट-घुटकर घुलने लगी।

श्रीकात की बदली को तीन-चार महीने बीत चुके थे। यहाँ से वह इटावे भेज दिए गए थे। सप्ताह में दो बार उनके पत्र सुखमा को मिला करते, जिनकी प्रत्येक पक्ति भाभी के प्रति देवर के स्नेह से भीगी रहती। कभी-कभी इन्हीं पक्तियों की लपेट मे ऐसी बाते भी आ जातीं जिन्हें भाभी के प्रति देवर की रसीली उक्ति कह सकते हैं। सुखमा को यदा-कदा संदेह होता कि क्या ऐसा सिलसिला बढ तो नहीं रहा है। प्रति पत्र खोलते समय उसे ऐसा होता कि वैसी बाते श्रीकात क्यों लिखने लगा है, तो भी उसके अंतस्तल को उनकी वाछा भी रहती। जब श्रीकांत के पत्र आते तो उसे कुछ समय के लिये पुरानी स्वस्थता आ जाती, परतु पीछे से जो प्रतिक्रिया होती, वह सुखमा को और भी तोड देती।

वह यद्यपि अपनी दशा देवेंद्रनाथ से छिपा रही थी, किंतु श्रीकात

के पत्र सदैव उनके सामने रख दिया करती। पढकर वह कहा करते—'श्री बडा रसिया हुआ जा रहा है। इटावे का जलवायु उसमे यह परिवर्तन ला रहा है।'

सुखमा इस उक्ति को मिली-जुली वृत्तियो के साथ ग्रहण करती, उसे भय होता और प्रसन्नता भी। जो हो, देवेंद्रनाथ इस ओर से निश्चिंत थे। यदि उन्हे कोई चिता हो रही थी तो सुखमा के स्वास्थ्य की जो अब प्रत्यक्ष रूप से बिगडने लगा था। उसकी भूख और नीद खराब हो चली थी और वह सूखी जा रही थी।

(४)

'हज़रत बनते तो हैं तुम्हारे लाडले देवर, किंतु जब तुम्हारी यह दशा हो रही है, तो यह भी न बना कि आकर तुम्हे जलवायु बदलने के लिये लिवा ले जाते। इटावा तो तुम जानती ही हो, प्रात भर के सबसे स्वास्थ्यप्रद स्थानो मे से है'—देवेंद्रनाथ ने कहा।

'यदि जाना ही हो तो उनकी क्या आवश्यकता, क्या मै नही चली जा सकती। तुम तो आज ऐसी बात कर रहे हो जैसे मै परदे मे की बहुरिया होऊँ'—सुखमा ने उत्तर दिया।

'नही, तुम्हारे स्वास्थ्य के कारण मैने उनके साथ जाने की बात कही थी।'

'घर के काम मे जितनी शक्ति व्यय हो जाती है, रेल मे उससे कही कम व्यय होगी, फिर चार घंटे की तो यात्रा है।'

देवेंद्रनाथ को और कुछ नही कहना था। यात्रा का दिन निश्चित हो गया और इसकी सूचना श्रीकात को दे दी गई।

'. . आप भैया को अकेले छोडकर आ रही हैं, यह चाहे उनको बहुत खले, किंतु मैं तो यही कहूँगा कि देवर ने भौजाई को जीत लिया , भैया मुँह देखते रह गए. ... '—श्रीकात ने लिखा ।

देवेंद्रनाथ पत्र पढकर बहुत हँसे । कहने लगे—'बडा बदमाश हो गया है, ले न ले वह अपनी भाभी को । लिखे देता हूँ कि तुम्हारी भाभी तुम्हे ऐसी प्यारी हैं तभी तो भेज रहा हूँ । किंतु बच्चा, याद रखना बहुत मँहगी पड़ेगी ।'

इटावा-यात्रा के निश्चित होते ही सुखमा एक नई स्फूर्ति एव उल्लास से भर गई तथा तैयारी आरभ कर दी । जीवन का जो रस चला गया था, उसका उसमे पुनः सचार होने लगा । उसका हृदय प्रस्थान के लिये उछल रहा था, किंतु उसमे एक छिपी हुई धडकन भी थी कि उसे घर न छोडना चाहिए ।

विवाह के कई वर्ष पूर्व से देवेंद्रनाथ और सुखमा का प्रतिदिन मिलना-जुलना था । ऐसी कोई घडी न जाती जब एक के ध्यान से दूसरा उतरता रहा हो । विवाह के बाद तो वे कभी अलग हुए ही न थे । सुखमा का नैहर नगर मे ही था । कभी-कभी वह वहाँ हो आया करती , नए ढग के परिवारो में नैहर-ससुराल के बीच कोई अलघ्य भीत तो रहती नही । अब यह यात्रा उसके लिये एक नया अनुभव होनेवाली थी, जिसने हृदय मे एक आंदोलन मचा रक्खा था । किंतु इसके ऊपर कुछ और भी था . . . . उसे इस प्रकार इटावे नही जाना चाहिए ।

फिर भी उसने सोत्साह घर से प्रयाण किया । देवेंद्रनाथ उसे बडी

ममता से सवार करा आए। इधर वह सूने हृदय से घर लौट रहे थे, उधर ट्रेन में उसकी लयपूर्ण गति के साथ-साथ सुखमा के हृदय की धडकन 'अच्छा किया', 'बुरा किया' की धुन लगाए हुए थी। दौडती हुई गाडी मे से इधर-उधर के दृश्य वह एक नशे की हालत मे देख रही थी। कई बार मन मे आया, इसी स्टेशन से उतरकर घर लौट चलूँ, किंतु कुछ निश्चय न कर पाई। ट्रेन इटावे के पास पहुँचती जा रही थी।

अब सुखमा के सारे बिखरे विचार इस विदु पर आ गए कि इटावे अब पहुँचे,. . . सुखमा खिडकी से झाँक रही थी, देखा—भीड चीरते हुए श्रीकात उसके डब्बे की ओर लपके आ रहे हैं। ट्रेन रुकते न रुकते देवर-भौजाई आमने-सामने थे। दोनो खिल उठे, सुखमा को डब्बे से उतारते हुए श्रीकात ने उसकी कलाई दबाकर मधुर कंठ से कहा—'भाभी, आखिर मेरा स्नेह तुम्हे यहाँ खीच ही लाया'। सुखमा इसका कुछ उत्तर देती, किंतु श्रीकात के कहने का ढंग उसे कुछ खल-सा गया। जिस प्रकार की आत्मीयता उन दोनो मे चली आ रही थी, सुखमा ने उसकी सीमा का, इस उक्ति मे प्रत्यक्ष उल्लघन पाया। वह चुप रह गई। किंतु मौन क्षणिक था। वे तुरत ही घुलकर बाते करने लगे जिसका सिलसिला बराबर डिप्टी साहब के बँगले तक जारी रहा। वहाँ पहुँचकर सुखमा ने पाया कि श्रीकांत का परिवार कई दिन पहले घर चला गया है। यह समाचार उसने सशक कानो से सुना।

(५)

सुखमा को इटावे आए कई दिन बीत चुके। उसका समय खूब

आमोद-प्रमोद मे कटता है, उसका स्वास्थ्य भी अपनी प्राकृतिक दशा की ओर पहुँचता जा रहा है, किंतु जिस वातावरण में उसके ये दिन बीत रहे हैं, उससे वह सात्म्य नही कर पाती। इतना ही नही, श्रीकात का साथ कभी-कभी उसे अनमना कर देता है। उनकी उक्तियाँ कभी-कभी उसका हृदय वितृष्णा से भर देती हैं। अब उसे विश्वास हो चला कि श्रीकात जान-बूझकर शील की सीमा को लाँघ रहा है और वह हठात् उसके सग घसिटती जा रही है।

सुखमा के हृदय मे देवेंद्रनाथ के बिछोह का जो तूफान उठा था, अब उसने एक बडा गभीर रूप धारण कर लिया। एक ओर प्रसन्नता और विरक्ति का मिला-जुला यह अद्भुत वातावरण, दूसरी ओर देवेंद्र-नाथ की दूरी, तीसरी ओर अपनी असमर्थता से सुखमा का हृदय कभी-कभी बहुत ही मथ उठता था, किंतु बीच-बीच मे श्रीकात का नशा उसे सब कुछ भूल जाने को बाध्य करता था। कई बार अपने समा-हित क्षणो मे उसने देवेंद्रनाथ को हार्दिकता से इटावा आ जाने के लिए लिखा, किंतु लिखकर वह पछताई भी, साथ ही इस बात से निश्चित भी रही कि वह कहाँ अपना अध्ययन छोड़नेवाले हैं।

इटावा नगर से थोडी दूर पर चबल का प्रखर और निर्मल प्रवाह जिन्होने देखा है, वे उसे कभी भूल नही सकते। ऊँचे कगारवाले किनारो की हरियाली के बीच लहराता हुआ यह नीलम का द्रव हृदय पर अपना स्थायी चित्र अंकित कर देता है। जिन्हे स्वास्थ्य सुधारना हो उनके लिये तो यह स्थान सद्यः प्राणवर्धक है। यहाँ की निखरी हवा, नेत्रलुब्धक दृश्य और अमृतोपम जल पाँच मिनट मे मनुष्य को

पुनरुज्जीवित कर देते हैं। इसीलिये श्रीकात सुखमा को वहाँ नित्य ले जाया करते। एक दिन उन लोगो ने स्थिर किया कि वही चाय भी जाया करे।

रास्ते से कुछ दूर एक निभृत हरेभरे कगार पर एक तिरछे वृक्ष की ओट मे श्रीकांत का ड्राइवर चायभरी थर्मस की बोतल और टिफिन-बास्केट धर गया। देवर-भौजाई बात करते हुए पीछे से धीरे-धीरे वहाँ पहुँचे। सुखमा एक छोटे से क्षुप का ढासना लगाकर पैर फैला के आराम से अधलेटी बैठ गई। पवन के एक शीतल झोंके ने उसके माथे का अंचल हटा दिया और लटो से खेलने लगा। आकाश मे बादल के दो-चार रजतखड धीरे-धीरे डोल रहे थे। तीसरे पहर की सूर्य-किरणे उनके ललाट पर अपना प्रकाश बिखेर रही थीं। इधर-उधर छोटी-छोटी पीली तितलियाँ मँडरा रही थीं। नीचे चंबल की कलकल ध्वनि एक अस्फुट सगीत सुनाती चली जा रही थी। सुखमा असल भाव से अनमनी-सी इस सब का अनुभव कर रही थी। उसका मन न जाने किन अज्ञात भावो मे डूब-उतरा रहा था, तो भी इस समय उसके हृदय मे कोई विरक्ति वा वितृष्णा न थी। सभवतः इस निभृत मे वह एक दिव्य सुख का अनुभव कर रही थी। श्रीकात की उपस्थिति उसकी इस वृत्ति का बाधक नही, साधक ही थी।

सुखमा ने श्रीकात के कहने पर जलपान की दो रकाबियाँ लगाईं, फल बनाए और चाय के तीन प्याले भरे; श्रीकात एक बार मे दो प्याले से कम चाय न पीते थे। फिर अपने प्याले से धीरे-धीरे चाय की चुस्की लेती हुई वह पूर्ववत् अपने मे ही निमग्न हो गई। सूर्य

क्रमशः नीचे उतरता जा रहा था और उसका प्रकाश स्वर्णिल होने की पूर्व-सूचना दे रहा था। उसकी आभा मे सुखमा के चेहरे पर एक अद्भुत लावण्य व्याप गया था। उस ओर देखते-देखते श्रीकात ने कुछ ही घूँटो मे अपने दोनो प्याले साफ कर दिए।

सुखमा ने अपने प्याले से कुछ चुस्कियाँ लेकर उसे रख दिया था। उसे भी श्रीकात, सुखमा के देखते-देखते उठाकर एक साँस मे दो-तीन बडी-बडी घूँटों मे पी गए। सुखमा ने मानो एक नींद से, चौंककर पूछा—'अरे! तुमने यह क्या किया?'

'मुझे क्या इतना भी अधिकार नही? मुझे तो अधिकार है. . .' कहते-कहते श्रीकात ने उचककर सुखमा को अपने बाहुपाश मे बाँध लिया।

सुखमा एक तीव्र आवेश से भर उठी, उनके बीच जो मार्दव पहुँचते-पहुँचते इस सीमा तक पहुँच गया था, वह एक क्षण मे बालू की भीत की तरह ढह गया और श्रीकात का चुबन के लिये झुका हुआ मुख उसके थपेडे से घूम गया। एक झटका देकर सुखमा अलग खड़ी हो गई। उसकी देह उद्वेग के कारण बेत की तरह काँप रही थी। उसकी अथाह काली पुतलियाँ बडा तीव्र प्रकाश उगल रही थी। किंतु श्रीकात मानो इन सबका कुछ लक्ष्य न करके, सतृष्ण वेग से उसकी ओर बढ़ा।

श्रीकात को बीच ही मे रोकती हुई उसने आवेश के स्वर में कहा—'मै नहीं जानती थी कि तुम इतने नीच हो सकते हो। तुम यह न समझना कि मेरे शरीर पर तुम अधिकार पा सकोगे। मै भले ही एक लबे

समय से निरतर तुम पर अवलबित होती गई हूँ, किंतु इस हद के लिये मैं कदापि तैयार न थी। चाहे तुम्हारी तुलना मे मैं तन से निःशक्त होऊँ, किंतु मेरी रक्षा के लिये यह चबल बह रही है। यदि तुम एक पग भी आगे बढ़े तो यह शरीर चबल मे डूबता दिखाई देगा।'

इधर कुछ महीनो से यदि एक ओर सुखमा का मानसिक स्खलन होता जा रहा था, तो दूसरी ओर बीच-बीच मे एक तीक्ष्ण प्रतिक्रिया भी काम कर रही थी, जिसके कारण आज तक उसके शील की रक्षा होती आई थी। इस समय श्रीकांत के व्यवहार की पशुता एव आकस्मिकता ने वह प्रतिक्रिया पूरी कर दी थी। फलतः सुखमा पूर्ण रूप से निर्मम हो उठी थी। श्रीकात के पाँवो मे मानो ब्रेक लग गया हो। उसका सारा नशा एक क्षण मे उतर चुका था। उसने अपनी सफाई मे कुछ कहना चाहा, किंतु सुखमा ने इसका मौक़ा न दिया। गभीरता से बोली—'सुनो श्रीकात ! जो कुछ हो चुका है, उसे मैं भूलने के लिये तैयार हूँ। किंतु अब मैं तुम्हारी कोई बात नही सुनना चाहती। चुपचाप रहो।' साथ ही उसने ड्राइवर को आवाज़ दी और पाँच मिनट के भीतर वे इटावे की ओर लौटते दिखाई दिए।

× × ×

कुछ घटे बाद, उसी रात सुखमा अपने घर के लिये लौट पड़ी। वह शारीरिक ही नहीं, मानसिक स्वास्थ्य भी लेकर लौट रही थी। उसने अपने पति से यदि अब तक कोई रहस्य रक्खा था, तो पिछले कई महीनों की अपनी मनोदशा का। किंतु घर पहुँचकर उसने पहला काम यही किया, कि विगत महीनों के रहस्य से लेकर चंबल-किनारे की

घटना तक विस्तार के साथ देवेंद्रनाथ को सुना गई—इस बोझ को वह और नही झेल सकती थी।

देवेंद्रनाथ अथ से इति तक धीरज के साथ ध्यानपूर्वक सुनते रहे। पर उन्होने सुखमा को इसकी सधि न दी, कि वह एक दोषी के रूप मे उनके सामने उपस्थित हो। वृत्तात समाप्त होते ही वह एक निवृत्ति की साँस लेकर सात्विक मुसकान के साथ बोले—'मै अधा नही हूँ। आरभ से ही सब कुछ देख-समझ रहा था, किंतु निश्चित था। मुझे विश्वास था, कि मेरी सुखमा दूसरे की नही हो सकती।'

उस क्षण इस बीसवी शती की पत्नी ने अपने कालेज के सहपाठी पति को एक देवता के रूप मे पाया। उनका वाक्य पूरा होते-न-होते उसका मस्तक अपने देवता के चरणो पर था, और यदि उसकी आँखो की कालिमा मे कोई भेद रह गया था तो वह आँसू के रूप मे विगलित होकर उन चरणो का पाद्य बन रहा था।

अब हम निश्चयपूर्वक कह सकते है, कि सुखमा की आँखो की थाह लेने की कोई आवश्यकता नही, क्योकि अब उनमे कोई भेद है ही नही।

मिठास

"तो मैं कहाँ से लाऊँ मिठास ? मेरी
बातों में भी थोड़ी सी शक्कर डाल दो।"

श्रीभूषण कचहरी से लौटकर कपडे उतार रहे थे। वह वकील हैं, काम अच्छा चलता है। घर बार से भी सुखी हैं—सुगृहिणी, होनहार लडके-लडकियॉ, अपनी तबियत का बनवाया मौके का घर। हॉ तो, वह कपडे उतार रहे थे कि उनकी पत्नी चद्रावली ने उस कमरे मे प्रवेश किया, कही बाहर से आई थी।

"आओ चंद्रा, कहो, कहॉ हो आई ?"

"भैया के यहॉ गई थी।"—चद्रावली का पीहर भी इसी नगर मे है।

"आजकल किस धुन में हैं, तुम्हारे भैया ?"—वकील साहब ने जिरह की।

चद्रावली के भाई ने दुनिया भर का लोक-कार्य अपने ऊपर ओढ

रखा है। चाहते हैं कि दिन-रात चौबीस घंटे के बदले पचीस-तीस घटे का होता तो और काम कर सकता—भले ही घर पर काम पड़ा रह जाय। चिराग़ तले अँधेरा होना ही चाहिए।

"भैया भी विचित्र हैं। अपने मित्र लक्ष्मणराम को, वह आपके भी तो मित्र हैं, न्योतकर स्वय भूल गए। वह बिचारे समय से आ गए। भाभी ने साधारण रसोई बनाई थी। सो भी अपने और भैया के लिये। उन्हें मालूम होता तब न? फेकू (नौकर) ने आकर भाभी से कहा कि लक्ष्मणराम आए हैं, कहते हैं कि मुझे न्योतकर तुम्हारे मालिक कहाँ चले गए। भाभी ने करम ठोका। मैंने कहा—'भाभी, घबराती क्यो हो। भैया अभी हई नहीं, तब तक हम लोग मिलकर सब ठीक कर लेंगी।'

" 'और तुम्हारे भैया समय से न लौटे, तब? उनका क्या ठिकाना, दो-दो, तीन-तीन बजा देते हैं।'

" 'तब क्या? भैया जाने और उनके दोस्त। हम लोगो का काम है, अच्छा खाना खिलाना, सो हम तैयार किए लेती हैं। तैयार होने पर एक बार कहला दूँगी कि कब तक प्रतीक्षा कीजिएगा, खा लीजिए। उनकी खातिर हो जायगी, चाहेगे खा लेंगे।'

" 'खाएँगे क्या'—भाभी ने कहा—'तब तक पान-इलायची भेजे देती हूँ।'—वह पान बनाने लगी, मै और चीज़े बनाने मे लग गई। पान भेजकर वह भी शीघ्र ही लग गई। हम लोगों को एक दिल्लगी सूझी—लक्ष्मणराम को मना कर दिया कि आप भैया से न कहिएगा। फेकू को भी डाँट दिया कि तू न कहना।'

"सब तैयार कर चुकी थीं, हम लोग कि घबराए हुए भैया पहुँचे, एक बजते-बजते। भाभी से बोले—'पुष्पा, मेरे भाग्य मे यही लिखा है कि तुम्हारे सामने अपराधी के रूप मे उपस्थित होऊँ।'

"'तुम्हे तो यही चोचले आते हैं। देखो! बेचारी चद्रा कब से आकर बैठी है, उससे तो बात करना नही, चले हो मुझसे मिठलाने'—भाभी ने अनजान बनकर कहा और मुझसे बोलीं—'देखी अपने भैया की लीला! बाहर बडे दूध के धोए बनते हैं, यहाँ पहुँचते ही लगे फुसलाने।'

"'मैंने ज़रा तेवर बदलकर कहा—'भाभी, तुम भी बडी क्रूर हो। बेचारे थके-हारे दोपहर बीते आए और आप अपना अपराध स्वीकार कर रहे हैं, फिर भी ऐसी बातें करती हो?'

"'आई बडी पक्षपाती, भैया की। आज तो एक ही बजा है, जब दो-दो, तीन-तीन बजा देते हैं तब अपराध नही करते? बहिन को देखकर एक-एक चरित्र कर रहे हैं।'—भाभी ने अनखने का अभिनय किया।

"'अरे कुछ सुनोगी भी कि आपस मे ही सब निपटारा कर लोगी? जानती हो, बाहर कौन बैठा है?'—भैया ने अधीर होकर प्रश्न किया।

"'जानूँ कैसे? जताने वाले तो अब आए हैं।'

"'अच्छा इस समय हँसी न करो, बाहर लक्ष्मणराम आकर घंटों से बैठा है। ऐसा नहीं हो सकता कि तुम्हे पता न हो।'

"'सो तो कभी सुना था। जैसे ही फेकू ने कहा, पान-इलायची भेज दी थी, और क्या करती?'

" 'फेकू ने कुछ और नही कहा ?'

" 'नही कहा ।

" 'नहीं कहा ?'

" 'बार-बार सही-जमोगा क्यो कर रहे हो ? बात क्या है, तुम्ही क्यो नही बताते ?'

" 'क्या बताऊँ ! तुमसे कहना ही भूल गया था कि लक्ष्मणराम को आज यही खाने के लिए न्योता है । बेचारा कब का बैठा है । सच बताओ, कुछ प्रबध हुआ है कि नही ?'—भैया गिडगिडाए ।

" 'न्योता ?'—भाभी ने लाचारी की मुसकुराहट से पूछा और खीझी—'प्रबध !' अचंभे से मुँह बनाकर वह भैया को देखने लगी ।

"भैया दयनीय हो गए थे । बुदबुदा रहे थे—'क्या घोघा है लक्ष्मण. कहला तो दिया होता, इन लोगो को.. घर समझता है... फिर भी . !'

"मैने कहा—'भाभी, अब बहुत दंड दे चुकी !'—वह भी हँसी रोक न सकी ।

" 'तो सब ठीक है ? भला जहाँ पुष्पा का राज्य हो, वहाँ कभी प्रबध मे त्रुटि हो सकती है ?'—भैया ने ऐसे कहा मानो दरिद्र को सपत्ति मिल गई हो ।

"मैने ताने से कहा—'यह भाभी ! दुलारी हैं न । सब यश उन्ही को ? मैने जो इतना किया उसकी कोई गिनती ही नही । अकेले इतनी जल्दी कर लेती रानी, तो देखती !'

" 'रोज-रोज़ तुम्हीं तो करती हो, बीबी रानी'—भाभी ने चुटकी

ली। साथ ही भैया ने फैसला करते हुए कहा—'तुम्हारा तो घर है, चद्रा! इनको तो दूसरे घर से ले आया हूँ न। इनकी खातिर करना ज़रूरी है।'

" 'अरे, बडे मतलबी हैं, तुम्हारे भैया। समझते हैं कि बिना चिकनी-चुपडी किए चिकनी-चुपडी समय से कैसे तैयार मिलेगी।'—हम तीनो ही हँस पडे।

"हम लोगो मे इतनी बात-चीत जल्दी ही जल्दी हो गई। भैया कहने ही जा रहे थे कि अब तुरत थालियाँ लगाओ कि बाहर से लक्ष्मणराम ने आवाज़ दी—'अरे, अब दो बजाओगे क्या? इतनी देर बैठा रक्खा, फिर भी संतोष नही।'

"भैया ने भीतर से ही उत्तर दिया—'मुझसे झूठ क्यो बोले? मेरा तो यह सुनते ही जी धक् हो गया था कि तुमने पुष्पा के पास समाचार नही भेजा।'

" 'उनका कहा न करता तो रोटी मिलती? पूछो उन्ही से।'—लक्ष्मणराम ने परदे के निकट आकर कहा—'अच्छा, बाहर आओ। उन लोगो को परोसने तो दो। भूख के मारे आँते इठी जा रही हैं।'

"भैया बाहर चले गये।"

× × ×

"थालियाँ लग जाने पर दोनो मित्र घुल-घुलकर बाते करते हुए भीतर आए। आप तो जानते ही हैं, भाभी और मै भैया के सामने लक्ष्मणराम से परदा नही करती। नमस्कार प्रणाम के बाद वह मुझसे बोले—'जानती हैं, आपके भैया ने किस काम मे इतनी देर लगाई?

घटो पहले लौट आए होते हज़रत, पर रास्ते मे एक ताँगेवाले की लापरवाही से एक कुत्ते की टाँग टूट गई। कुत्ता ज़ोर से चीखने-चिल्लाने लगा, किंतु ताँगेवाले को क्या, वह भगाता चला गया। पर हमारे दयावतार यह कैसे देखते। ताँगेवाले को पकड़ा; उसे लाचार किया कि कुत्ते को घोड़ा-अस्पताल पहुँचावे। वहाँ उसकी मरहम-पट्टी कराई, तब यहाँ पहुँचे हैं। मेरी बिल्ली कब की खोई है, कितना कहा कि खोज दो, किंतु मुझ पर दया न करेंगे, क्योंकि भाई पर दया करने की आवश्यकता नहीं।'

" 'दुष्ट कहीं का. .'—भैया कुछ कह रहे थे कि भाभी ने बात काटकर कहा—'इनसे यह तो पूछिए कि दुनिया भर का इतज़ाम तो यह करते हैं, घर का इतज़ाम कौन करे ?'

" 'तुम।'—भैया उन्मुक्त हँसी हँसने लगे।

" 'और इनका प्रबंध ?'—मैंने पूछा।

" 'भगवान्!—देखो आज कैसा भेज दिया तुम्हे, समय से!'—थाली पर बैठते-बैठते भैया ने कहा।

" 'पुरुष चूड़ी पहनकर घर मे बैठ जायँ, देखे स्त्रियाँ सब कर लेती हैं या नहीं!—और उनसे बढ़कर!'—भाभी के स्त्रीत्व ने अपने को कुछ लगाते हुए कहा। उनकी नाक-भौंह तनिक चढ़ गई, खिलवाड़ मे ही। दूसरे ही क्षण हँसते-हँसते वह पानी परोसने लगीं।

"दोनों मित्र हँसी-खुशी भोजन मे प्रवृत्त हुए।"

× × ×

"क्या क्या बना था ?"—वकील साहब ने पूछा।

चद्रावली गिना गई ।

"अच्छा, देखता हूँ तुम लोगो ने इतनी जल्दी कई तरह की चीज़े बना डाली थी। लक्ष्मणराम को कौन चीज सबसे अधिक रुची ?"

"छौंकी मटर की उन्होने बडी तारीफ की और कई बार माँगा भी । कहते थे—'मटर तो रोज़ खाता हूँ, किंतु घर मे ऐसी मीठी नही बनती ।' भैया भी कहने लगे—'पुष्पा की छौंकी मटर कभी ऐसी नही होती, जान पडता है यह चंद्रा की कारीगरी है ।'

" 'क्यों बहन ?'—लक्ष्मणराम ने मुझसे पूछा । मैंने तनिक-सा हँस दिया ।

"लक्ष्मणराम ने भी हँसते-हँसते कहा कि—'मैंने सोच लिया था कि यह बच्चू दुनिया भर के खोए हुओ को उनके घर पहुँचाते फिरते हैं, किंतु अगर किसी दिन यह खो जायँगे तो कम-से-कम मै इन्हें खोजने न जाऊँगा । पर, आज की मटर की मधुर स्मृति मे वचन देता हूँ कि तुम्हारे भैया को कभी खोने न दूँगा ।'

" 'अच्छा, किसी की अक्ल खो गई है, तब तक उसे ही खोज लाइए।'—पुष्पा ने दबी जबान से कहा। उसकी मुसकुराहट हम सब की हँसी मे लुप्त हो गई ।

". .बड़ी प्रसन्नता से भोजन समाप्त हुआ । किंतु भाभी के सिवा किसी ने यह न जाना कि मैंने मटर मे, पकते समय तनिक-सी चीनी डाल दी थी ।"

"और भाभी तुम्हारा भडा फोड देती, तब ?"

"भडा क्या फोड देती ! वकील की पत्नी हूँ कि हँसी ठट्ठा । पहले

ही वचन ले लिया था कि नई तरकीब सिखा रही हूँ। किसी से बताना मत।"

"हाँ, यह संकीर्णता तो तुम लोगों का अंग-स्वभाव है।"

"लगे न विष बोलने।"

"तो मैं कहाँ से लाऊँ मिठास? मेरी बातों मे भी थोडी शक्कर डाल दो।"

"अच्छा, लेती आऊँ।"—चद्रावली चीनी लाने के लिये बढी।

किंतु श्रीभूषण ने साग्रह उसकी कलाई थामकर रोक लिया—"रहने भी दो, चीनी डालकर मटर ही मीठी की जाती है। मिसरी के रहते उसका क्या काम, मुझको. "—और श्रीभूषण के ओठ चद्रावली के अधरो पर थे।

नई दुनिया

"कोई किसी को सजा नहीं दे सकता, चिरागी। जब आदमी अपने को सचमुच गुनहगार समझता है तो आप अपने को सजा देता है।"

"गजरा, कल सवेरे ही मुझे पच्चीस रुपए की जरूरत पड़ेगी, तुम्हें देना होगा।"

"तुम तो सब जान-बूझकर मेरा गला रेतते हो, चिरागी! भला इतनी जल्दी पचीस का बंदोबस्त कैसे हो सकता है?"

"सेठ कम्बख्त किस दिन के लिये है?"

"उस बेचारे के पास अब क्या रखा है!"

"'बेचारा'! 'बेचारा'!! देख रहा हूँ कि इधर तुम उस कम्बख्त को प्यार करने लगी हो। गजरा, इसका नतीजा अच्छा नहीं। क्या तुमने चिरागी को अभी तक नहीं पहचाना?"

"चिरागी, ऐसी बातें करके मेरा जी न जलाओ। तुम्हीं ने गजरा

को नहीं पहचाना है, तभी ऐसा कहते हो।"—गजरा की आँखें डबडबा आईं।

उसके पीले मुरझाए चेहरे की गढन बिलकुल बच्चों-जैसी थी। ऐसा लगता था कि अवस्था के विकास का साथ चेहरे ने नहीं दिया है। भोलापन उसके चेहरे पर ऐसा लुब्ध था कि उसे छोड़ना न चाहता था। सुँघनी रंग लिए काले बालों की दो-चार अल्हड़ लटें, उस चेहरे की सहचरी की तरह उसके इधर-उधर कुलेल कर रही थीं। इकहरा नाज़ुक बदन; आबरवा की फालसई रंगवाली मसली हुई झीनी साड़ी। गजरा अपने कोठे पर मैले रौंदे हुए फर्श के एक किनारे बैठी थी। सामने पानदान खुला था और वह पान बनाकर चिरागहुसेन को देती जाती थी। इधर-उधर दो-तीन गाव-तकिए पड़े थे, जिनका गिलाफ बहुत दिनों से बदला न गया था। एक ओर एक पुराना हारमोनियम और तबले रक्खे थे। दीवार पर छपे हुए सस्ते चित्रों की एकहरी क़तार लगी थी और आमने-सामने दो बड़े आइने टँगे थे। छत से दो-चार रंग-बिरंगे शीशे लटक रहे थे।

चिराग़ी ने रुखाई से पूछा—"तब क्यों उस जहन्नुमी को बेचारा कहती थी?"

"मेरा रहम तो मुझसे न छीनो, चिराग़ी! जिसने मेरे लिये अपने को कौड़ी-कौड़ी का मुहताज बना डाला, उस पर कम-से-कम रहम तो करने दो!"—गजरा ने नरमी से प्रत्याख्यान किया।

"उसे तुम्हारी चाह थी इसलिये तुम पर निसार हो गया। इसमें रहम की कौन-सी बात है?"

"चिरागी, मुझमे अगर औरत का दिल न रहने दो, तो इसान का दिल तो बचा रहने दो। ख़ूँख़्वार हैवान न बना डालो।"—गजरा ने भीख-सी मॉगी।

"हटाओ इस बहस को। मै कुछ नहीं जानता, चाहे जैसे हो उससे पच्चीस रुपए आज ऐंठो।"—चिरागी ने बात टालते हुए उसी हुकूमत से कहा, जिससे वह उससे बाते करता आ रहा था।

चिरागी गजरा के सामने एक दरवाज़े से पीठ टेके खडा था। लबा जवान, गठा हुआ शरीर, गेहुँआ रँग, खसखसी दाढी, मोटी चढी हुई मूछे। बीच से मिली हुई घनी भौहो के छज्जे के नीचे बडी-बडी ऑखों मे अभी तक रात-जागने और नशे की लाली छाई हुई थी। सिर पर अँगरेज़ी काट के तेल-चुपडे हुए घने बालो पर उन्नावी मख़मल की टोपी, गले मे चॉदी का एक तावीज। तन पर महीन पजाबी कुरता, चढी हुई बाई कलाई पर सुनहली रिस्टवाच बँधी थी और दाहने हाथ मे गठीला कोता डडा था। कमर मे चारख़ानेदार बरमी तहमत बँधा था और पैर का चमाचम पप जूता उसके इस ठाट के लिये आइने का काम दे रहा था।

चिरागी जब बाते करता तो उसकी भौह सिकुड जाती और ललाट पर बल पड जाते। ऐसा जान पडता था कि एक यक्षित वृक्ष खडा हो और उसके तले, उससे विवश कोई असहाया बैठी हो।

गजरा ने सिटपिटाकर उत्तर दिया—"मै जानती हूँ, अब उसके पास एक झझी कौडी भी नहीं बची है। जोरू के गहने तक तो उतरवा लाया था।"

"तो उसे कोठे पर क्यो चढ़ने देती हो ?"

"अगर आकर घटे-आध घटे एक कोने मे बैठा रहता है तो इसमे मेरा क्या बिगड़ता है ?"

"अगर वह पैसा नही खर्च कर सकता, तो उसकी मजाल नही कि इस गली मे क़दम रक्खे। या तो रुपए दे या अपना लाद फड़वावे। देखूँ तो, आज कैसे बचाजी तुम्हारे कोठे पर पाँव धरते हैं। अगर पेट मे छुरा न भोक दिया तो चिरागहुसेन नाम नही।"—उसका तेवर और भी चढ़ गया।

"क्यो बैठे-बैठाए जहमत मोल लेते हो, चिराग़ी! मै ही उसे मना कर दूँगी।"

"तुम्हारी इन्ही बातो से तो मै और कट जाता हूँ। अगर तुम्हे उसकी मुहब्बत न होती, तो ऐसी बाते न करती, तुम्हे उसकी जान प्यारी है।"

"चिराग़ी, मुझे तुम्हारी जान प्यारी है। आफत मोल लेते हो तुम और घुँट-घुँटकर मरती है गजरा।"—गजरा का गला भर आया।

"क्या तुम्हारे पास पद्रह रुपए भी न निकलेगे? इतने से भी किसी तरह काम चल जायगा।"

"चिराग़ी! तुम तो बच्चे बन जाते हो। तुम्हारे मारे पैसा बचने पावे तब न? तन पर के गहने तक तो मुलम्मे के रह गए। पेट खाने और तन पहनने के सिवा अगर तुमसे कुछ भी छिपा रखती होऊँ तो बताओ?"—उत्तर मे सत्य की दृढ़ता थी।

"तो क्या इधर दो-तीन दिन मे कोई आमदनी नही हुई?"

"यह न पूछो, भई। जानते ही हो कि अब किस ठिकाने पहुँच चुका है मेरा रोज़गार। सेठ उलटे माँग न बैठे, इसी में ख़ैरियत समझो। दाल की मंडी की रोज हवा खानेवाले चिरागी की चहेती के कोठे पर चढ़ने की हिम्मत नहीं करते। तुममें इतना सब्र भी तो नहीं है कि दुधार गायों को कम-से-कम तरह तो दे जाओ। कौन अपनी जान आफ़त में डालने के लिये इस चकड्बे में आ फँसे। हाँ, कोई नई चिड़िया आ फँसती है तो उससे कुछ ऐंठ लेती हूँ. इधर दो-तीन रात की कमाई सात रुपए के लगभग है, वह हाज़िर है। मैं तो अपनी क़िस्मत कूटती हूँ कि इस पेशे में भी यह हालत और यह हालत मेरे चहेते की कि मेरी सलाह सुनने में वह अपनी बरबादी समझता है।" गजरा ने लंबी साँस ली।

"गजरा! ज़ुल्म न करो। तुम्हीं ने इस ख़ूँख़ार शेर को अपनी जादू की डोर में बाँध रक्खा है। नहीं तो, चिरागी अब तक कई बार फाँसी के तख़्ते पर लटक चुका होता। यार लोग हँसी उड़ाते हैं कि चिराग को तो गजरा के आँचल ने जाने कब गुल कर दिया। मगर शेर को बकरी नहीं बना सकते, दाँत तोड़कर, गजरा!"—चिरागी ने भी एक लम्बी साँस ली।

"लेकिन चिराग़ी, सुबह का भटका शाम को घर आ सकता है।" ममता से चिराग़ी को भर आँख देखते हुए, गजरा ने ठहर-ठहर कर कहा।

"तो क्या मैं गुमराह हूँ?"

"क्यों चिरागी, तीन बोतल रोज़ के बदले अब दो बोतल ढालने

से ही आदमी राह पर आया समझा जायगा ? बाज़ार मे तुम क्या आफत बरपा करते हो ; जेल को तुमने किस तरह अपना दूसरा घर बना रक्खा है—उसकी बात तो जाने दो , मेरे सग तुम्हारा जो बर्ताव है, जरा उसी पर गौर करो। मेरी हड्डियो की बिना बात जो मरम्मत अभी आठ दिन पहले तुमने की थी, उससे वे आज भी कराह रही हैं। बताओ कौन-सा हफ्ता जाता है कि एकाध बार तुम मेरा कचूमर न निकालते हो ? हो सकता है कि यह बातचीत जाकर मेरी कचरधान मे पूरी हो। जो तुम्हारी हो चुकी है, जिसने अभी तक इसीलिये यह पेशा अख्तियार कर रक्खा है कि तुम्हे किसी बात की तकलीफ न हो, उसी के सग ऐसा बर्ताव, क्या राह की बात है ? ओफ! अगर तुम्हे इस बात का गर्रा हो कि—'गजरा मुझ पर ऐसी निसार है कि मेरे लिये अपना तन तक बेचती है', तो तुम्हे लानत है। मै तुम्हारी होकर भी इस तरह टके-टके पर बिकती रहूँ ?

"आँखे न नीची करो, चिरागी! अभी सुनते चलो—हम एक दूसरे को अब एक-दो दिन से नहीं, साल-डेढ साल से जानते हैं। इस बीच तुमने मेरी कमाई पर कैसी दियासलाई लगाई है। गहनो की तो गिनती ही क्या , मेरे पेशवाज तक बिक गए। एक फटा-सा बच रहा है, उसकी मरम्मत कराने के लिये रुपए नही जुटने पाते । सहालग के दिन आ गए हैं ; कही से बुलाहट हुई तो क्या पहनूँगी—तुमने कभी सोचा है ?

"जो मुँहजली दुनियाँ अभी कल तक मेरे टुकडे की मोहताज थी, उसी के यहाँ तुमने मुझे एक नही तीन-तीन बार भेजकर मेरा हाथ

फँसवाया और आज तक उसके रुपए फेरने की नौबत न आने दी। तुम्हे देखकर तो वह लबे-लबे सलाम करने लगती है, लेकिन पीठ पीछे मुझे कैसी-कैसी सुनाती है, इसकी भी ख़बर ली है तुमने ?

"भौंह न चढ़ाओ चिरागी ! क़सूर एक बार नही, सौ बार तुम्हारा ही है। पहले तो, क्यो उससे लेन-देन कराया ? फिर कराया ही था तो, क्यो न उसमे सफाई रक्खी तुमने ? सुनते चलो, घबराओ मत, आज अपने दिल के फफोले फोडे बिना दम न लूँगी !—उसी निगोडी दुनियाँ के यहाँ इस पद्रह रुपए के वास्ते जाने के लिये, मुझे इसी दम लाचार कर सकने हो तुम। और, मुझे झखमारकर, कुत्ते की तरह दुम दबाकर जाना ही पडेगा। इतना ही नही, अगर तुम मुझे लाचार करो तो मुझे इतने ही रुपयो के लिये सेठ से चोरी या उसकी औरत का ख़ून तक करवाना पडे चाहे एक कौडी भी हाथ न लगे पीछे। जब ऐसी हालत है तो किस मुँह से .''—गजरा बरस रही थी।

"ओफ !!! अब नही सुना जाता ; बस करो गजरा"—बरसती हुई गजरा को, विचलित होकर चिरागी ने रोका, जो तल्लीन होकर उसकी स्पष्ट, हार्दिक ममतापूर्ण आलोचना सुन रहा था—"क्यो न ये बाते तुमने पहले कही मुझसे ?"

गजरा उसी धुन मे कहने लगी—"कहती कैसे ; बताओ तो, आज के सिवा कभी भी होश मे इस कोठे पर आए हो तुम ? और जब आए हो तो क्या किया है—जिस बेख़ुदी की हालत मे रहते थे उसी मे मुझे भी मुब्तिला करके, मेरे सिर भी नशे का भूत सवार कराके अपनी तलब पूरी करने के बाद तुमने अपनी राह ली है या यहीं बेहोश सो

गए हो। और जब मुझे होश आया है तो मैने तलफ-तलफ कर और इन्ही बातो को लेके रोते-रोते राते काटी हैं। शायद तुम्हारा यही ख्याल रहा है कि तुम्हारी धौंस मुझे कठपुतली की तरह नचाती रही है, लेकिन क्या तुमने कभी यह नहीं सोचा कि औरत कभी भी बिना तबीयत के गुलामी गवारा नही कर सकती"—कहते-कहते गजरा रो पडी।

चिरागी के अतस का सारा ढाँचा हिल उठा। उसने अपने को गजरा के अधीन पाया। उसे खींचकर हृदय से लगाके, उसके आँसू पोछते हुए, मसृण कठ से कहने लगा—"गजरा! तुम जो कुछ कहती हो उसका एक-एक हरफ सही है। मै हर तरह तुम्हारा गुनहगार हूँ—चाहे जो सज़ा दे लो।"

गजरा ने अपना मस्तक चिरागी के चौडे वक्ष पर टिका दिया। तनिक गरदन ऊँची करके, उसे भर-आँख देखती हुई बोली—"कोई किसी को सज़ा नही दे सकता, चिरागी। जब आदमी अपने को सचमुच गुनहगार समझता है, तो आप अपने को सज़ा देता है।"

चिरागी देर तक गजरा को चूमता रहा। फिर उसके गाल थप-थपाकर कहने लगा—"तुम ठीक कहती हो, गजरा। अपने को सज़ा देकर मैने तुम्हारे सामने अपनी सफाई देने की ठान ली है। लेकिन इस बला से छुट्टी पा लेने दो, जिसके लिये रुपए माँगने आया था।"

"क्या बला है? कुछ सुनूँ भी तो"—गजरा ने साग्रह चिरागी को फर्श पर बैठाया और आप भी उसके सहारे बैठ गई।

"यह अभी न पूछो, गजरा मै वादा करता हूँ कि बता दूँगा। कभी कोई बात छिपाई है तुमसे? लेकिन अभी नहा।"

"क्यो ?"

"भई, सच बात यह है कि सुनकर शायद टालमटोल करने लगो।"

"पागल हुए हो! मै तो इसलिये पूछ रही थी कि शायद बिना रुपयो के ही काम चलाने की कोई सूरत निकल आती"—गजरा ने सलाह दी।

"इतना मै तुम्हे यक़ीन दिलाता हूँ, कि रुपए के बिना काम नही चल सकता"—चिरागी ने स्नेह से उसका हाथ सहलाते हुए कहा—"सात तो तुम्हारे पास हैं ही, बस आठ-दस की और ज़रूरत है। तुम चाहो तो कोई-न-कोई बदोबस्त कर सकती हो ; मुझे यक़ीन है। कर दो, गजरा। जब तुम वजह सुनोगी तो मान जाओगी कि ज़रूरत कैसी सख्त थी"—चिरागी ने साग्रह अनुरोध किया और निश्चय दिलाया।

गजरा तनिक देर सोचती रही, फिर सहसा कह उठी—"अच्छा मुझे आध घटे की छुट्टी दो। आध घटे बाद आ जाओ ; पद्रह क्या पूरे पचीस की सबील हो जायगी"—उसके कठ मे एक उत्तेजना थी। जान पडता था, उस पर जो कुछ बीतेगी उसे वह झेलने को तैयार है।

"वाह मेरी अच्छी गजरा!"—उसका प्यार करता हुआ चिरागी कोठे से उतर गया।

× × ×

आध घटे बाद जब चिरागी पुनः कोठे पर चढ रहा था तो सीढी पर कपडे की जलॉध और धुएँ के अवशेष से उसका माथा ठनका। जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ डॉक कर वह कोठे पर पहुँचा। देखा एक ओर

कपड़े की राख पड़ी है और गजरा उसमें से गोटी अलग कर रही है, जिसकी एक छोटी-सी ढेरी उसके आगे रक्खी है।

"अरे ! यह क्या ?"—चिरागी ने घबराकर पूछा।

"और क्या करती ?"—जल्दी से आँसू पोछते हुए, गजरा ने प्रश्न का उत्तर प्रश्न से ही दिया।

"पहले ही मुझसे क्यों न कहा ?"

"सब कुछ तो कह चुकी थी। फिर भी जब तुमने कहा कि काम नहीं चल सकता तो और कौन रास्ता था ?"—गजरा ने हँसते हुए पूछा।

"क्या ज़रूरत का यह मानी था कि अपना एक ही पेशवाज फूँक डालो ?"

"नहीं तो, ज़रूरत कैसी ?"—गजरा ने गम्भीरता से पूछा।

चिरागी ने अपना माथा ठोका—"अजी.... मैं क्या यह जानता था"—उसे अपने ऊपर बड़ा रोष भी आ गया था।

"अब क़िस्सा ख़तम करो। ले जाओ इसे। बीस से ऊपर की गोटी होगी"—गजरा ने सादगी से कहा।

"ले क्या जाऊँ ! चिरागी से बढ़कर कौन लानती होगा जो उन दोज़खी कुत्तों के लिये अपनी चहेती का पेशवाज जलवा डाले। कल कलकत्ते के उन्हीं तीनों हरामियों, बसतू, हबीब और ज्ञानी बाबू की चिट्ठी मिली कि वे फिर बनारस आ रहे हैं। पिछली मर्तबा तुम उनके तमाशे देख ही चुकी हो। साले ज्ञानी को तो रोज़ पाँच पुड़ियों से कम कोकीन न चाहिए; बसतू को दम-दम पर गाँजे की दम की दरकार

होती है और हबीब 'एक्शा नम्बर वन' के नीचे नहीं उतरता। सोचा था, कम-से-कम एक रोज की मेजवानी तो तैयार रक्खूँ। फिर वे जानें और उनका काम। शाम को तुम्हारा मुजरा सुनवाकर उनसे गला छुड़ाता। जब मैं कलकत्ते में था तो ये लोग हाथ पर रखते थे मुझे।"

तीनों कलकतियों की सूरत गजरा के सामने खड़ी हो गई—देखने में पूरा भलामानस किंतु एक नम्बर का फूहड़ बकनेवाला मोटा मुछ-मुंडा जानी, चुसके चेहरे में मोटरकार की बैक-लाइट-जैसी लाल-लाल आँखवाला, बाँका तिरछा बसन्त और तुरत रक्तपान किए हुए भालू के चेहरेवाला हबीब, क्योंकि उसे पान की पीक की सम्हाल न थी जो उसके मोटे होंठ के छोरों से उसके दाढ़ीवाले काले भयावने मुख पर निरन्तर बहती रहती थी। वह सिहर उठी।

"बस यही सख्त जरूरत थी? मर्दों की समझ ऐसी ही होती है, तभी तो छिपा रहे थे।" गजरा ने मुँह बिचकाकर कहा—"अब तुम अपनी अक्ल अपने पास रक्खो, कुछ मेरी भी सुनो—पाक-पर्वरदिगार ने जाने मेरी कौन सी मिन्नत सुनकर तुम्हें यहाँ होश की हालत में खींच लाने की रहमत की और तुम्हारी आँखें खोलीं। अब क्यों जबरन अपने को शैतान के सुपुर्द कर रहे हो, चिरागी! तुम तो जो ठान लेते हो उसे बिना आगा-पीछा किए कर गुज़रते हो फिर इसी में ढील क्यों दे रहे हो। यह तो तुम्हारी ख़सलत के ख़िलाफ़ है।"

"गोली मारता हूँ उन जहन्नुमी कुत्तों को! गजरा! आज तक तुम कहाँ छिपी थीं, प्यारी! ओफ़ मैं तो तुम्हें आज पा रहा हूँ, क्या तुम मुझे पाने दोगी?"

"अः ऐसी बात न करो, प्यारे, जब तुम खुद ही खो गए थे तो मुझे पाने का कौन सवाल था ?"–गजरा ने एक लंबी साँस ली।

"तो मुझे इजाज़त दो कि आज ही तुमसे निकाह करके अपनी सचाई का इज़हार करूँ।"–चिराग़ी ने खुले जी से कहा।

"मेरे लिये इससे बढकर और कौन ख़ुशक़िस्मती होगी कि तुम मुझे अपना लो"—प्रसन्नता से गजरा ने कहा और आग्रह किया—"लेकिन इतने से ही काम न चलेगा। तुम्हे मेरी एक बात और माननी पडेगी।"

गरदन के इशारे से ही चिराग़ी ने जिज्ञासा की—"क्या ?"—और बोला—"बिना सुने ही मजूर करता हूँ।"

"आज ही यहाँ का मुँह काला करो। वे सब आ पहुँचे तो निकाह-सिकाह ताक़ पर रक्खा रह जायगा। अगर इस बार तुम डूबे तो जाने कब धरती पर पाँव टिके। देखो, मैंने तो यह सोचा है कि हम लोग आज दिल्ली चले चलें। जब वही तुम्हारा वतन है और तुम बाप-दादों के हुनर को आज भी नही भूले हो, साथ ही वहाँ के लोग भी तुम्हारे घराने को नहीं भूले हैं। तो कोई वजह नहीं कि तुम दयानतदारी से 'फूलकारी' का काम करो और वह न चमके। वहाँ कोई हमारे आमालनामे से वाक़िफ नही। इने गिने को इतनी याद हो तो हो कि अपनी वेवा माँ को बीमार छोडकर उन्नीस बरस का चिराग़ी भाग गया था। नई दुनिया होगी, नए दिन होगे।"

"लेकिन रुपए का बंदोबस्त ?"

"बता चुकी हूँ कि सात तो तैयार हैं। पेशवाज जलवाकर ख़ुदा ने, इस पेशे को छोडने का पयाम दिया है। अब कोठे की इस सजावट

की क्या जरूरत रह जायगी ? नए चौक[1] से कबाडियो को बुलाकर यहाँ की आरायश भी बेच डालो इससे भी बीस एक तो मिल ही जायँगे। इस तरह पचास के लगभग ”

चिरागी भी जाग उठा—“और मेरी बची हुई शराब की बोतले! उस दिन तुमने बीस मँगा दी थी। उनमे से, ठहरो कितने दिन हुए—आज छः दिन बीत चुके, आठ ज्यो की त्यो रक्खी हैं। उन्हे ठेकेदार को वापस कर दूँगा। रुपए बारह मिल जायँगे।”

“बस सब काम बन जायगा। यहाँ कोठे का किराया, कस्साब व नानबाई का हिसाब चुकाने और काज़ी को निकाह पढाई देने पर कोई चालीस रुपये बच रहेगे, जो हमारे रेल-भाडे और गिरस्ती शुरू करने को काफी होगे। इस बीच ख़ुदा जरूर तुम्हारा काम जमा देगा। फिर तो कोई बात ही नही।”—गजरा को भगवान् का पूरा भरोसा था।

“बहुत ठीक”—कहकर चिरागी नए चौक की ओर चलने को हुआ। गजरा एक नूतन उत्साह और गौरव से माती हो रही थी।

---

१ काशी का एक बाज़ार जहाँ कबाडियों की दूकानें हैं।

आवरण

" ...तुम्हारे हाथ में अधिकार है अतएव, तुम नियम बनाना भर जानते हो; नियम पालन करना नहीं। हाँ, उसे तोड़ने में पटु अवश्य हो।"

[यह उस समय की बात है जब आदिम आर्यों ने अपने समाज का संगठन आरंभ किया था ।

एक वन के उपांत में अपनी पर्णकुटी के सामने कमठ बैठा है। वह पुष्ट मांसल तरुण है—ताँबे के (क्योंकि लोहे का आविष्कार तब तक मनुष्य ने नहीं किया था) बाण-फलकों को तेज करके सरकंडों में जुड़ाता जा रहा है। सामने पेड़ की सघन डाल लटकी है। उसी के सहारे युवती उर्वी खड़ी है। उसके हाथ में एक रँगा हुआ मिट्टी का ख़ाली घड़ा झूल रहा है।

दोनों का कद लंबा, वर्ण धवल, ललाट उन्नत, चेहरा सुडौल लम्बोतरा, नाक उठी हुई, भौंह भरी हुई, आँख पिंगल, आयत एवं

पक्ष्मल तथा केश मटोला-स्वर्णिल है। उसमें लट पडी है। नारी का केश, बिना चोटी के एक जूडे में, माथे के पीछे बँधा है और पुरुष का मस्तक के बीच मे। पुरुष को गुलझटदार गहवर मूछ और दाढी है। दोनों के शरीर घने लोमश हैं, दोनो ही के तन पर वस्त्र नही।]

"एक बडी विचित्र बात सुनी है, कमट ?"—इस जिज्ञासा के साथ-साथ उर्वा की आँखे भी उस अचरज को खोज रही थी।

"क्या ?"—कमठ ने तटस्थ भाव से, स्वय प्रश्न करके व्यक्त किया कि उसने उर्वा का आशय ठीक-ठीक नही समझ पाया है।

"दो एक दिन मे कोई नई बात नही सुनी ?"—गभीर होकर उर्वा ने दृढ स्वर मे पुनः प्रश्न किया। उसके नेत्र कमठ की आँखो मे इस प्रकार गडे हुए थे कि उसके हृदय से सच्ची बात खीच लावेगे, उसे दुराव न करने देगे। किंतु—

कमठ एक बाणफलक को, बडी सलग्नता से शरकाड मे जुहाते-जुहाते कहने लगा—"नई बात तो हर घडी सुनने को मिलती है, उर्वा। यदि न मिले तो जीवन मे कोई रस ही न रह जाय।"—उस एकाग्रता से उसने अपनी इस उक्ति की तात्विकता निदर्शित की।

"जाओ, तुम तो टाल रहे हो।"—उर्वा ने खीझकर तनिक भौंह मरोर के उलाहना दिया और पुनः अपनी बात पर आ गई। "मै पूछती हूँ कि कोई चौका देनेवाली बात. ."

"हॉ, हॉ चौका देनेवाली बात सुनी है।"—कमठ ने बात काटते हुए, सरस उन्मुक्त कठ से विश्वास दिलाया।

"सुनूँ!"—ललककर आग्रह किया गया।

"सुनो—कल बभ्रु ने एक मृग को तीर से घायल किया। तीर उसकी पिछली टाँग मे लगा और वह लँगडाता-लँगडाता भागा। बभ्रु ने उसका पीछा किया। दोनो ही बेतहाशा बढे जा रहे थे कि एक पतला-सा सोता आ पडा। हिरन जो उसमे से होकर निकला तो उसकी टाँग से बाण गिर चुका था और लँगडाना भी मिट गया था। बस उसने पूरी चौकडी भरी और ओझल हो गया। बभ्रु ने जाकर सोते को देखा तो उसमे पानी न पाया, वह किसी काले-काले द्रव का प्रवाह था, जिसमे से उत्कट सुगध आ रहा था। उसने डरते-डरते उसमे दहना हाथ डाला। प्रत्यचा खीचते-खीचते उसमे पीडा हो रही थी, बस उस तरल का स्पर्श होते ही वह जाने कहाँ उड गई। तब उसका साहस और बढा। उसने उस पदार्थ का आचमन किया—आचमन करना था कि सारी थकान मिट गई और पूर्ण पुनर्नवता आ गई।"— कमठ बडे भाव से सुना गया। उसने उर्वा को टोकने का अवकाश ही न दिया।

"रहने दो यह तो मै पहले ही सुन चुकी हूँ।"—उलाहना मिला—"मै पूछती हूँ कोई ऐसी बात, जिसका सबध हमारे-तुम्हारे जीवन से है।"—उर्वा चाहती थी कि उस विषय की गभीरता का अनुभव कमठ भी करे और उस सबध मे उससे खुलकर बाते कर ले। उसे विदित है कि कमठ कुछ तो उसे खिझाने के लिये और कुछ बातचीत करते रहने के लिये जानकर अनजान बन रहा है।

"उर्वी, भला इससे बढकर और कौन-सी बात होगी जिसका सबध हम लोगो के जीवन से हो? इसी की खोज तो सृष्टि के पहले दिन

से ही रही थी।"—कमठ ने अपना पक्ष पुष्ट करते हुए कहा और उसके समर्थन में बताया—"कल से जिसे देखो, उस प्रवाह पर पहुँच रहा है।"—साथ ही उसने हार्दिकता से प्रस्ताव किया—"चलो, हम भी वह अमृतरस पीकर जीवन के वसत को अजर बना आवे।"

"कमठ, पुरुष को तो बस, नित्य-वसत की खोज रहती है!"—उर्वी आहत-सी जान पडती थी।

"और स्त्री को नही! ऊँ?"—व्यग्यपूर्वक मुसकराकर कमठ ने वासना से उर्वी को देखा।

"स्वेच्छा से नही, कमठ। स्त्री को उच्छृखल बनाने का दायित्व पुरुष पर है।"—उत्तर के स्वर और उत्तर देनेवाली के चेहरे, दोनो ही से विरक्ति और कटुता टपक रही थी।

कमठ ने पाया कि बात का बहाव गभीरता की ओर बहा जा रहा है। उसने सजग होकर पूछा—

"कैसे?"

"ऐसे—जनयित्री पृथिवी और जनयिता द्यौ का यही विधान है कि 'स्त्री अपनी रक्षा आप न कर पावेगी, अतएव उसकी रक्षा का भार पुरुष पर रहे।' परंतु. हाय उस भार से पिसी जा रही है स्त्री! अमर द्यावापृथिवी का यह वरदान अभिशाप बन गया है, क्योकि उनकी दिव्य-दृष्टि मे पार्थिव आँखो से देखने की शक्ति नही। भेड की रखवाली उन्होंने भेडियो को सौप दी है। उनके विधान की ओट लेकर पुरुष ने स्त्री को केवल एक क्रीडा-वस्तु, एक भोग्य सामग्री बना रखा है।"—उर्वी की यह सरोष प्रगल्भता उत्पीडितो की आह मुखरित कर रही थी।

कमठ ने इस तीक्ष्ण सत्य को वितडा से काटना चाहा—"मै इस बात को यो कहूँगा—स्त्री कृत्या बनकर पुरुष को लगी है। उसके पीछे पुरुष ने अपने को महा अशाति, भीषण सघर्ष और दुर्निवार सकट मे डाल रखा है।"

किंतु उर्वा ने सिर हिलाकर व्यग की हामी भरी और आक्षेप से हँसकर बोली—"तुम तो ऐसा कहोगे ही, क्योकि तुम पुरुष हो। किंतु" —वह गभीर हो उठी—"विचार करके देखो तो, उक्ति मेरी ही सच्ची है। यही न तुम्हारा तात्पर्य है कि पुरुष के लिये स्त्री प्रकृत्या आकर्षक है, अतएव उसके निमित्त वह अपने को ऐसी-ऐसी विपत्ति मे झोंक देता है? परंतु मै कहती हूँ"—वह नारी की विषम परिस्थिति का इज़हार कर रही थी—"स्त्री को तो पुरुष का आकर्षण इतना प्रबल है कि उसकी रक्षा के नाम पर पुरुष उसके प्रति जाने क्या-क्या अत्याचार कर रहा है, फिर भी इसी मे सुख है उसे, बिना किसी मर्मर के। और, वह पुरुष को अपना आधार, अपना आसरा, अपना अवलब बनाकर मूक भाव से उसका अनुसरण कर रही है।

"यदि पुरुष की निर्ममता इतनी भीषण न होती और नारी की सुकुमार चेतना ने अपने को उसकी सर्वथा मुखापेक्षी न बना रक्खा होता, तो क्या पुरुष उसे निमित्त बनाकर इस प्रकार की मनमानी कर पाता?"—उर्वा ने वह कैफियत तलब की जिसका सतोषप्रद उत्तर पुरुष आज भी नहीं दे पाया है। फिर भी कमठ को एक संधि प्राप्त थी। क्योंकि दो-चार दिन पहले ही उन आर्यों ने अपने समाज मे विवाह की प्रथा चलाई थी। अतः उसने पुरुष की महत्ता जताते हुए उत्तर दिया—

"किंतु अब तो हम लोगो ने यह अनवस्था दूर करने का निश्चय कर डाला है।"

"क्या ? वही तो मै पूछ रही थी, कमठ।"—उर्वी ने कमठ के इस प्रकार देर लगाने पर, तनिक झनककर कहा।

"अब से, उस दैव विधान के गौरव का अनुभव करते हुए, पुरुष अपना भार आप वहन करेगा। तुम्हें अपना आधा अंग बनाकर अपनावेगा और दायित्वपूर्ण सहचर-भाव से, तुम्हारे सग जीवन-यात्रा सम्पन्न करेगा। इस प्रकार का परिग्रह स्थायी एव सबको मान्य होगा और नारी की वह छीन-झपट अब न मचा करेगी। अन्यथा, तुम्हारा नाश करके पुरुष अपना नाश पहले कर रहा है।"—कमठ बड़े ध्यान से उर्वी की मुख-मुद्रा का चढ़ाव-उतार देख रहा था, कि वह इस निश्चय का कैसा स्वागत करती है।

परंतु उधर से कोई स्वागत न हुआ। उर्वी ने गभीरता से केवल इतना पूछा—"किंतु कमठ! क्या केवल नियम से परिस्थिति बदल जाती है ?"

"न क्यो ?"—कुछ अचरज से कमठ ने पूछा।

"स्त्री को देखते ही तो पुरुष पगला उठता है। वह विधान-सिधान को क्या गिनेगा ?"—उर्वी ने भी प्रति प्रश्न किया, उपेक्षा से हँसते हुए।

"अब वह पागल होने ही न दिया जायगा!"—कमठ ने धाक जमाई।

"कैसे ?"—उर्वी ने भी कुतूहल का अभिनय किया।

"अब तुम लोगों को अपने शरीर पर आवरण रखना पड़ेगा कि

तुम्हारा नग्न सौंदर्य हमे आकृष्ट न कर सके।”—उर्वी को कमट ने ऐसे देखा मानों बड़े गुर की बात सुना दी हो।

“हाँ! देखो क्या परिणाम होता है, कमठ!”—उर्वी ने मुँह बिचकाकर कहा और खिलखिलाकर हँसने लगी।

“क्यों! क्या तुम्हें सदेह है?”—कमठ ने अकचकाकर पूछा।

“निःसन्देह।”—उर्वी ने निश्चयपूर्वक कहा। कमट को इसी उत्तर की आशका हो रही थी।

“कारण?”—कमठ आकुल होता जा रहा था।

“कारण यही कि तुम्हारे हाथ मे अधिकार है, अतएव तुम नियम बनाना भर जानते हो, नियम पालना नहीं। हाँ, उसे तोड़ने मे पटु अवश्य हो।”—उर्वी ने उसको तथ्य से धिक्कारा। किंतु इस तथ्य का उर्वी के सदेह से क्या संबध है, यह कमठ के लिये एक पहेली ही बना रहा।

“अर्थात्?”

“तुम अपनी मति बदलने मे अक्षम हो!”—उत्तर मे थपेड़ा लगा।

फिर भी मानो कमठ को टोह न लगी; बोला—“समझाकर कहो।”

“क्या होना है उस आवरण से?”—प्रश्न की दूरदर्शिता के साथ-साथ एक बौछार भी थी—“कुछ सोचा भी है?”

“सुनूँ, तुम्हारे ही मुँह से।”—कमठ को जान पड़ा कि वह भँवर मे पड़ गया हो।

“हुँः, भला पुरुषों मे इतनी कल्पना कहाँ? अच्छा मै ही बताती हूँ, सुनो—होना यही है कि उस आवरण से हमारा सौंदर्य तुम्हारे लिये और भी दुरूह हो जायगा, और तुम रहस्य के पीछे भागते फिरोगे।

अभी तो अव्यक्त की खोज मे मुनि ही माथा मारा करते हैं, तब तो जिसे देखिए—आकर्षण की इस अव्यक्तता के फेर मे सिरखप्पी कर रहा है। आह ! इस उपाय से तो तुम इस समस्या की जटिलता और बढा रहे हो। हाय रे पुरुष-बुद्धि !" उर्वी पैनी दृष्टि से कमठ की ओर देखने लगी।

कमठ स्तब्ध हो गया था, तनिक-सा सिर झुकाकर। ऐसा जान पडता था कि वह निरुत्तर हो गया है, फिर भी किसी उत्तर की खोज मे है।

कुछ क्षण बाद वह सहसा उठ खडा हुआ और चटपट उर्वी के बिलकुल निकट पहुँचकर, निर्द्वंद्व धीमी आवाज़ से, विलंबित लय मे, उद्ग्रीव होकर बोला—"हो, जो होना हो, उर्वी !"—फिर उसने तनिक निःश्वासपूर्वक तात्विक वाणी मे कहा—"बिना ठोकर खाए मार्ग थोडे ही मिलता है।"

उर्वी ने चुप रहकर इस तथ्य को सकारा।

अब प्रफुल्ल, सानुराग चितवन से उर्वी को साभिलाष भर-आँख देखते हुए, आधा पल बिरमकर, कमठ कहने लगा—"मै तो और कुछ नहीं, केवल इतना जानता हूँ"—उसका कंपित कंठ बहुत मृदु और स्निग्ध हो उठा—"कि अब जाकर मै किसी को सदा के लिये, पूर्ण रूप से अपना पाऊँगा।"—और उस के प्रपुष्ट विशाल बाहु ने उर्वी को सोल्लास अपने आवरण मे लपेट लिया तथा उसके उत्तप्त ओठ उसे भर-अहक चूमने लगे। .. ..उर्वी की एक न चली; उसके हृदय ने द्रुत गति से उसका सारा भेद खोल दिया और उसे वह चूमना चुकाते ही बना।

आश्रित

दरिद्र के भी हृदय होता है—

वह स्वयं मन मार सकता था ? किंतु अपने बच्चों का बिलखना कैसे देखता ? बच्चे तो बच्चे, उनको तो उमंग होगी ही।

दुबला, पतला, चिपटा युवक, जिसे जवानी के साथ-साथ बुढापा भी आ गया था, मोटे शरीर और उससे भी अधिक मोटी बुद्धिवाले, परतु पक्के पूँजीपति मालिक को अखबार सुना रहा था—

'महात्माजी जहाज पर'

शीर्षक सुनते ही सेठ साहब का मुँह बिचक गया। उनके गुदकारे गालों मे कई गड्ढे पड गए। अपनी गद्दी पर उन्होंने एक करवट ली, उस पर तेल का जो बडा-सा धब्बा पडा था, वह उनके पसीने से चिप-चिपे शरीर से ढक गया। दूसरी ओर स्याही और पान के कई दाग उघड आए।

वह ठठरी-जैसा युवक सवेरे से साँझ तक १२) महीने पर पिसाई

करता था। सेठजी के व्यापार संबंधी अँगरेज़ी पत्रव्यवहार पर नियुक्त था। किंतु बीच-बीच मे जो समय ख़ाली बचता, उसमे डाकघर मे माल का पारसल लगाने, तगादे जाने, बाज़ार करने से लेकर सेठ साहब को अख़बार सुनाना और उनके अचूक तीखे वाग्वाणो का लक्ष्य बनना तक उसकी ड्यूटी मे गिन लीजिए।

शीर्षक सुनते ही सेठ देवता कटकर बोले—'आख़िर जाना ही था तो इतना आडबर क्यों?'

युवक ने मोटे चश्मे मे से अपनी आँख एक क्षण को उनके चेहरे पर गड़ाई। उन आँखो मे खीझ थी। पर सवाल रोटी का था। खीझ खिसियाहट मे बदली और अत मे मुँह पर फीकी हँसी लाकर उसने अपना भाव छिपाने की चेष्टा की।

'देखते हो गुलाबदास, हँसा भी तो क्या सूखी हँसी।'

सेठ साहब के मुनीमजी बही-खाता लिखने मे व्यस्त थे। मालिक की बात सुनकर भी इतमीनान से उन्होंने अपनी पंक्ति पूरी की। बालू-दानी से बालू छिड़ककर उसे सुखाया। खाता बद किया। उन्हे सिर के बाल से कलम पोछने की आदत थी; किंतु अब सिर चदोला हो गया था, तो भी सस्कारवश चाँद पर ही कलम घिस के कलमदान में रक्खा। जो स्याही उँगली मे लगी रह गई थी, उसे चूँदरी हो रही चाँदनी पर सिखा; तब प्रामाणिकता-पूर्वक उत्तर देने में प्रवृत्त हुए—

'कुछ न पूछिए सरकार, इनकी हँसी है कि आफ़त! एक बार मुझे देखकर हँसे—उस दिन मेरा पैर टूटते-टूटते बचा।'

युवक क्रोध से अख़बार का कोना नोंच रहा था।

'तुम्हे कभी बुद्धि भी आवेगी, यह कौन हरकत ?'

युवक ने छूछा विनय दिखाते हुए पूछा—'आगे बढ़ूँ ?'

सेठजी कुछ और सोच रहे थे। उसकी बात पर ध्यान दिए बिना ही कह दिया—'हॉ !'

युवक पढने लगा—'आज . . .'

सेठजी उधर मुखातिब न हुए। मुनीम से पूछने लगे—'माधोराम से अब कितना पावना है ?'

युवक को एक ही शब्द पर शिथिल होना पडा।

गुलाबदास ने उलाहना-सा दिया—'अभी वसूल ही क्या हुआ ? सूद भी तो नहीं चुकाया।'

सेठजी ने लापरवाई और सरहस्य प्रसन्नता से कहा—'क्या हर्ज़ है ?'—फिर कुछ रुखाई से युवक से कैफियत तलब की—'चुप क्यों हो गए ?'

युवक ने विनय का अभिनय किया—'आप दूसरी बात मे लग गए थे।'

'कान तो तुम्हारी और था।'—उन्होंने अपनी शतावधानता जताई—'अच्छा आगे बढो।'

किंतु बीच ही मे गुलाबदास, मानों युवक के हिमायती बनकर, बोल उठे—'सरकार, अब तो इन्हें जाने दीजिए। देर होती है !'—यह व्यग युवक के लिये बडा कटु था।

'क्यो, क्या कोई काम है ?'—सेठजी ने अनजान बनकर पूछा।

गुलाबदास ने बात बीच ही में लोक ली—'सा' ब, यार-दोस्तो के

संग घूमने जाना है, क्या यह थोडा काम है ?'

'जायँगे क्या ? बचा की टेट मे कुछ है भी ?'—एक गूढ मुस्कराहट से सेठजी ने युवक—अपने आश्रित—से पूछा—'क्यों, गाँठ मे कुछ है ?'

कुत्ते को रोटी के लिये कभी आपने दाँत निपोडते देखा है ? ज़रूर देखा होगा, दरिद्र देश मे और दृश्य कहाँ ! वैसी ही चेष्टा से बेचारा युवक बोला—'मै तो अभी माँगने ही वाला था।'

'देखा ! गुलाबजी, न मालूम पैसा क्या कर डालता है !'

'इनकी अमीरी बाहर देखिए, महराज ! दो आना रोज़ तो पान को चाहिए !'

'क्यो जी, मुनीमजी क्या कहते हैं ?'

'जी, मेरे पास इतने पैसे कहाँ ? मित्रों का प्रेम मानता नही, वे ही मुझे पान खिलाने लगते हैं।'

युवक ने कुछ सकोच से कहा। फिर, अख़बार पढने मे प्रवृत्त हुआ—

'आज एक बजकर इकतीस मिनट पर ... .'

'बात क्यों टालते हो ? चोरी पकड गई न ! जानते हो, पैसे कैसी कठिनता से आते हैं, मुझे बुत्ता देकर ले जाते हो और उसे यो फूँकते हो।'

'हाँ साहब, ठीक है, चार पैसा बटोरें, तो एक बात भी है ; यहाँ तो पाया और उडाया !'—मुनीमजी ने कहा।

'बचाऊँ कैसे'—उसे लाचारी से साफ-साफ कहना पडा—'१२)

और रुदन, पत्नी का करुण अनुरोध, उसकी आँखों में झूलने लगा। आज वह क्या मुँह दिखावेगा? मेले का समय बीत रहा था। उसकी आँखे भर आईं, हृदय को एक पीड़ा मसल उठी और अपनी आह को दबाता हुआ वह सेठजी के कमरे की बड़ी-बड़ी सपाट दीवारो को, रिक्त याचक दृष्टि से देखने लगा; किंतु वहाँ उसे क्या मिलना था! अमीरों की तरह दीवारो को भी तो आँखे नहीं होती।

सुहाग

……आह, उसने गुड़ियों के व्याह भी रचाए थे। क्या वह जानती थी कि व्याह इसी का नाम है?……

विमला के मन मे भी अभिलाषाएँ थी। भले ही उसने बीसवीं शती की आख्यायिकाएँ न पढी हों, किंवा सिनेमा न देखा हो, किंतु नानी की कहानियाँ सुनकर बडी तो हुई थी, जिनमे नायिका को सदैव त्रैलोक्यसुदर राजकुमार सात वन, सात पर्वत, सात नदी और सात समुद्र पारकर, अनेक विघ्न-बाधाओ को परास्त करता हुआ, अपनी नीली घोडी पर बैठाकर ले ही जाता है। यदि न भी सुना होता, तो क्या ? उसके वक्ष मे नारी का हृदय तो स्पन्दमान था।

किंतु उसके पिता गोमतीप्रसाद कन्या के वैवाहिक जीवन की पूर्णता उसके स्वर्णाभूषण से लदे रहने ही मे मानते—'औरतो को और चाहिए क्या ?' उधर विमला की माता ने अपने सतीत्व की पराकाष्ठा

इसी मे समझ रखी थी कि अपना व्यक्तित्व पतिदेव के चरणों मे चढा दे। फलतः उसमे रामचरितमानस की उमा-जननी मेना के आदर्श का अभाव हो गया था ; उसे अपने पति से यह कहने की आवश्यकता न रह गई थी—

करिअ बिबाह सुता अनुरूपा।
न त कन्या बरु रहै कुँआरी।
कत, उमा मम प्रान-पियारी।

गोमतीप्रसाद के प्रति न्याय करने के लिये, यह कह देना आवश्यक है, कि उनके उक्त सिद्धांत के मूल मे बहुत कुछ उनकी परिस्थितियों का भी हाथ था। आर्थिक जर्जरता के कारण जब दिन भर की दौड़-धूप के बाद भी वह यही पाते कि उनकी बिरादरी की सकीर्णता, रूप से भी कही अधिक रूपे पर मुग्ध है, तो किटकिटाकर यही क़सम खाते कि—'चाडालो, तुम्हे यदि चॉदी की जूतियो से सर नही कर सकता तो क्या हुआ ? किसी ऐसे को दामाद बनाऊँगा जिसकी जूतियाँ तुम्हारे सिर पर नाचा करती हों।' जब उनकी स्त्री डरते-डरते उनसे दिन-भर के परिश्रम का ब्योरा पूछती तो वह ये ही बाते बकने लगते।

इस प्रकार समाज से अपमानित गोमतीप्रसाद ने जब एक दिन, जीवन की पंद्रहवी सीढी पर पैर रखकर नीचे की चौदह सीढियों का ममत्वपूर्ण सिंहावलोकन करती हुई और ऊपर की सोलहवीं की ओर बढने मे चिहुँकती हुई, दरिद्रता के उपवासप्राय वातावरण मे पली, दुबली-पतली निरी छोकरी विमला का पल्ला हठात् विधुर कृष्णमुरारी से बॉध दिया—जो जीवन की पैंतालीसवीं सीढ़ी से छियालीसवीं पर

ठीक उलटा रहता है, साथ ही ट्रेन छूट जाती है और जब उतरना सभव नही रहता, तब उसे अपनी भूल अवगत होती है। जिन दिनो गोमतीप्रसाद दिन पर दिन मध्यवित्त घरो की ओर से निराश हो रहे थे और उनकी प्रतिहिंसा-ज्वाला भडकती जा रही थी, उस समय क्या उसे इस बात पर ज़ोर न देना चाहिए था, कि कोई ग़रीब घर खोजो जहाँ का लडका अच्छा और होनहार हो ?

अब विमला की विदा के समय यद्यपि उसकी माता इस प्रकार पछाड खा-खाकर रोते हुए अपने हृदय को मानसिक दुर्बलता के कारण अपनी बेटी के सामने खोल न सकी और न बेटी ही, जिसने आज तक माँ से कुछ भी दुराव न किया था, सकोचवश इस अवसर पर माँ के सामने खुल न सकी, तो भी एक ने दूसरी के अंतस्तल को भली भाँति समझ लिया, जैसा कि माँ-बेटी मे ही होना सभव है, और इसके कारण विदा के समय उनकी करुणा कई गुना दारुण हो उठी।

(२)

जो हो, विमला कृष्णमुरारी की परिणीता हो चुकी थी और जब वह अपने नए घर मे पहुँची, तो उसने अपने को वहाँ के वैवाहिक रजगज की एक सामग्री मात्र समझा। एक क्षण के लिये भी उसके मन मे यह भावना उदित न हो पाई कि इस सारे रजगज का निमित्त ही नही अपितु निमित्त का केंद्र वही है। कुछ दिन बीतने पर भी वह उस घर से वा उसके प्राणियों से कोई हार्दिक सबध न जोड सकी। यद्यपि उसे कृष्णमुरारी लगातार भूरि-भूरि स्नेह और उपहारो से लादता जा रहा था, तथापि उस पूज्य पोथी की भाँति, जिस पर प्रतिदिन मन्नत

माननेवाले एक पर एक नया वेठन चढाते जाते हैं तथा इस प्रकार उसमे निहित तत्त्व और भी पतो के भीतर छिपता जाता है, उसकी सारी भावनाएँ उसके अंतस्तल के भीतरी से भीतरी तल मे समाते जाने के सिवा और कोई परिणाम नही हो रहा था। किंतु वहॉ वे अवरुद्ध भावनाएँ पृथ्वी के भीतर छिपी अनत ज्वाला की तरह एक भीषण विस्फोट का, एक प्रलय का उपक्रम कर रही थी।

यह नही कि विमला कृष्णमुरारी के निकट न पहुँचना चाहती रही हो। वह इसके लिए बडा जोर मारती। किंतु वह जितना-जितना उसके सन्निकट होने जाती है उतना ही उसे सब प्रकार अपने से बडा पाती है और इस छोटे-बडे की भावना के ढाल पर वह जितनी बार फिसलती, उतनी ही बार कृष्णमुरारी से उसकी दूरी और बढ़ जाती, दूसरी ओर कृष्णमुरारी ने अपने को उसका इतना क्रीतदास बना रखा था, कि प्रकृति ने नारी को नर के वशवर्ती करने की जो शक्ति दे रखी है उसका विमला उपयोग ही न कर पाती। इस कारण वह शक्ति घृणा और तिरस्कार मे परिवर्तित होकर कृष्णमुरारी को 'दूर-दूर' किया करती। फिर भी विमला एक हिंदू पत्नी थी, सब तरह कृष्णमुरारी की हो रहना ही उसने अपने जीवन का ध्येय बना रखा था।

इस प्रकार प्रकृति और आदर्श के द्वद्व मे पडी हुई विमला की बुरी छीछालेदर हो रही थी। जहॉ कृष्णमुरारी चाहता कि उसकी नई पत्नी उसके उपहारो से प्रसन्न होकर उसके स्नेहपाश मे आबद्ध हो जाय, वहॉ विमला की नारी-प्रकृति पाती कि जिस प्राप्य के लिये उसे मान करना चाहिए था, रूठना चाहिए था, ठनगन करना चाहिए था, वह

उसके पास हठात् चला आ रहा है, फलतः वह उस ओर से मुँह मोड लेती। किंतु आदर्श के अनुसार विमला का धर्म था कि अपने पति के उपहारो को सिर चढावे तथा कृतज्ञ हो और इसमे वह न तो रत्ती भर चूकती, न माया रचती। इस अमायिक व्यवहारमात्र से कृष्णमुरारी पूर्णतः सतुष्ट था। उसे विश्वास था कि वह अपनी पत्नी से जो कुछ पा सकता था, मिल रहा है।

विमला मे घात-प्रतिघात का वेग इतना बढ गया था कि वह बिल्कुल भौंचक हो उठी थी। अतएव जिस भीषण विस्फोट का उपक्रम उसके भीतर हो रहा था, उसके सबध मे वह स्वय धोखा खा रही थी। उसकी प्रतीति थी कि यद्यपि प्रकृति की उत्ताल तरगों के उद्वेलन ने उसे विकल कर रक्खा था, फिर भी वह उद्वेलन उसकी मर्यादा की सुदृढ़ बॉध से विताडित होकर छिन्न-भिन्न हुआ जाता था; साथ ही वह बॉध भी प्रत्येक टक्कर के बाद और ठस हुआ जाता था. ....

अपने पति के सबंध मे तो विमला के मन की यह दशा हो रही थी। जहॉ तक उस कुटुम्ब के अन्य प्राणियों का सबंध था, उसका हृदय बिलकुल खोखला, बिलकुल रिक्त हो रहा था, उस नारियल-जैसा जिसमें पानी ही नही, गरी तक सूख-सड गई हो। इसका कारण था कुटुंबियों का बडा विलक्षण एवं अस्वाभाविक व्यवहार। जहॉ इस बालेपन मे विमला के जीवन का संबध खेल-कूद के दिनो से बना रहना अनिवार्य था, वहॉ जब उसकी सौत की मातृहीन संतति, तेरह वर्ष का एक पुत्र और ग्यारह की एक लडकी उसके पास आ बैठती तथा विमला का मन उन्हें गुइयॉ बनाकर खेलने को होता, किंतु उसे वे 'माताजी, माताजी'

कहकर एक बडी-बूढी जैसा आदर-भाव प्रदर्शित करते, तो उसका हृदय टूक-टूक हो जाता।

अपनी 'सिसुता की झलक'-वाली मनोवृत्ति के सतर्पण के लिये उसे एकमात्र यही मार्ग रह गया था, कि अपने कमरे की उन आलमारियो मे की चीजे वह धरा-निकाला करे, जिन्हें उसने सजा रखा था। उनमें चीनी मिट्टी तथा कचकडे के कितने ही खिलौने और सजी-बजी गुडियॉ थी। तरह-तरह के सिंगारदान, अतर की शीशियॉ (जो शिवनिर्माल्य की भॉति केवल दर्शनों के लिये थीं, बरतने के लिये नही), जापान की बनी कागद के कुट की सुदर रँगी-चुँगी रकाबियॉ, बहुत ही छोटे-छोटे चाय के सेट और लप, ढकने पर भॉति-भॉति के सीप और कौडी बैठाए हुए डब्बे, कॉच की नकाशीदार रग-बिरगी तश्तरियॉ थी, तथा मिट्टी के खिलौने एव और फुटकर सामान जैसे चकडोरी, फिरहरी, रबर के रगीन गेद और फुलंकू, यहॉ तक कि उन साबुनो के रग-बिरगे खाली बक्सो तक का एक खासा सग्रह था, जिन्हें वह बर्त चुकी थी।

पद-मर्यादा की खॉई विमला के सौतेले लडकों तक ही सीमित हो, सो नही। उसके दो देवर थे, उनकी स्त्रियॉ अवस्था मे उससे काफी बडी थीं—एक छब्बीस बरस की, दूसरी तेईस की। वे जब उसे 'जेठानी-जी, जेनाठीजी' कहकर सम्मान दिखाने लगती, तो विमला उस सम्मान के भीतर हेठी, झिडकी और निरादर की एक मोटी पर्त का अनुभव करती। उनके भी बालबच्चे थे। वे प्रायः ताई के पास आ बैठते और डर, आश्चर्य तथा कौतूहल की दृष्टि से उसे देखते और थोडी देर मे बिना कुछ कहे सुने चुपचाप उठकर भाग जाते। विमला के इन्हीं की उमरवाला

एक भाई था, वह कितना चाहती कि उसी की भाँति इन छोटे बालको को खींचकर छाती से लगा ले, किंतु उन्हे विमुख और कोसो दूर पाती।

घर मे मानो कोई ऐसा था ही नही जो उसे अपनाना चाहता हो या अपनाने देता हो। हाँ उसके देवर अवश्य कभी-कभी उससे बाते किया करते—उनके लिये वह नीरस और फूहड हँसी-दिल्लगी एव बाली-ठोली का लक्ष्यमात्र थी। मानो उनका अनिर्वाध अधिकार था कि वे इस लक्ष्य का चाहे जब, जिस प्रकार और जितने विषवाणो से वेध करते रहे। उनके परिहास मे एक बडा तीक्ष्ण व्यंग्य रहता, जो विमला को उनके भैया की परिणीता न स्वीकार करके, वासना-पूर्ति का साधन मात्र, एक खेली भर प्रतिपादित करता। इससे विमला के नारीत्व को कितनी मर्मांतक ठेस लगती ?

सबसे करुण और दारुण बात तो यह थी कि इस तरह की ठठोली को कृष्णमुरारी भी सुनी अनसुनी कर देता। इतने ही से वह अपनी नैतिक दुर्बलता का परिचय दे सो नहीं। यदि कभी एकात मे विमला इसका उलाहना देना चाहती तो भी वह बात टाल जाता। भाग्य !

कुटुंबियों के बाद दास-दासियो का भारी समूह था। एक-एक काम पर दस-दस आदमी जान पड़ते, जिसका परिणाम यह होता कि पता ही न चलता कि कौन किस काम पर है। वे 'नई बहू, नई बहू' करके उसे ऐसा हाथों पर लिए रहते कि वह सर्वथा अपग हो बैठी थी ; हाँ, वही जो अपने हाथो गृहस्थी के सारे भार वहन करती-करती बडी हुई थी। वैभव की इस आँधी मे वही एक मुरझाई पत्ती की तरह निराधार उडी चली जा रही थी।

फिर गए दिनो की याद, आए दिन ! . दरिद्रता थी तो क्या ? जीवन

मे कितना रस, कितनी नवीनता, कितनी उन्मुक्तता थी! सवेरे से माँ के सग गृहस्थी करना। खेलने का अवसर न मिलता था तो क्या? माता के प्रेम से गृहस्थी ही खेल बन जाती थी वह प्यारा भैया चुनुआ . पर्व-पर्व पर गगा-स्नान मदिरों मे दर्शन नित्य ठाकुरजी की प्रसादी मिसरी को घटों मुँह मे चुभलाना दो वर्ष तक स्कूल की प्रारभिक पढाई जलपान की छुट्टियों में झुड-की-झुड लडकियो के संग स्कूल के घिरे मैदान मे ऊधम और किलकारी वे सब जाने कहाँ-की-कहाँ हो गई, जाने किस जजाल मे पड गई होंगी! विमला के लिये स्त्री-ससारमात्र बदी था स्कूल की वह छोटी गुरुवानी जी .केवल इसी-लिये रोब गाँठा करती थी कि वह छोटी थी कभी-कभी पिता के सग मेले-तमाशे मे जाना वहाँ की रेवडी और चना-जोरगरम .चरखी पर का घूमना पिता का क्रोध जब उस पर आता तो कितना खलता, किंतु वही जब अपने छोटे-से मकान के इने-गिने किराएदारों के सिर घहराता तो उसके बचपन के लिये खेल-तमाशा बन जाता . आह, उसने गुडियो के ब्याह भी रचाए थे! क्या जानती थी कि ब्याह इसी का नाम है?...विमला का दम घुटने लगता।

इस प्रकार विमला के दिन बीत रहे थे। किंतु दुनिया कहती—'यह कितनी भागमान है, कैसा राज रज रही है!'—इसी का तो नाम है दुनिया, जिसने ताजमहल-जैसे भव्य आडबर के अंतस मे हड्डियों का सडा-गला अवशेष मात्र दाब रखा है।

(३)

'महेस...बडे बाबू न बुला रहे हैं?'—इस आवाज़ की गूँज ने

विमला के भीतर जाने किस सोते हुए को जगा दिया जो उसे सुनने के लिये छैला उठा, विकल हो उठा। नीचे कृष्णमुरारी की भारी हवेली के प्रशस्त आँगन मे एक अपरिचित नूतन कठ की पुरुषोचित खनक आदोलित हो रही थी।

महेस कृष्णमुरारी का खिदमतगार था। किंतु झुड-के-झुड नौकरो मे सभी मोटमर्द और हरामखोर हो गए थे। बैठे-बैठे तबाकू पिया करते। कई बार पुकारे जाने पर एक बार सुनते। अभी कृष्णमुरारी (बडे बाबू) उसे तीन आवाज़ दे चुका था, परतु वह अनसुनी कर गया था। किंतु इस नई पुकार मे आदेश, फुर्तीलापन और कैफियत की माँग ओतप्रोत थी; इसे वह टाल न सका। सिर खुजलाता-खुज-लाता आया।

'क्यो जी, बडे बाबू ने तीन-तीन आवाज़ दी, तुम आए क्यों नही?' उसी कठ ने रोब से पूछा।

'नही सुना, मुनीमजी। तभी नही न आए।'—महेस ने भी रोब गाँठना चाहा।

'यह सब अब न चलेगा। बडे बाबू ने तुम सब का बंदोबस्त हमपर छोड दिया है। सीधे से काम करना हो तो करो, नहीं अपना हिसाब लो और चलते बनो। हम यह न देखेंगे कि तुम नए हो या पुराने। हम तो मालिक का आराम देखेंगे। यहाँ मालिक चिल्लाया करे, वहाँ तुम लोग बैठे-बैठे गप लडाओ।'

महेस सिटपिटाकर बडे बाबू का मुँह देखने लगा, किंतु बडे बाबू विश्वास के साथ नए मुनीम नंदकुमार का मुँह देख रहे थे जो अभी कई

दिन पहले नौकर हुआ था। जिस घड़ी से उसने काम आरंभ किया था उसी घड़ी से मालिक का मन अपने हाथ में कर लिया था। कृष्णमुरारी को इस ढलती उमर में जिस अवलंब की आवश्यकता थी वह मिल गया था, इसलिये उस पहली ही घड़ी से उसने अपने को नंदकुमार पर ढील दिया था।

'बोलो, क्या कहते हो?'—नंदकुमार ने दो टूक प्रश्न किया।

'ठीक-ठीक काम क्यों न करूँगा, मुनीमजी? बड़े बाबू का कदम छोड़कर कहाँ जाऊँगा?'

'अच्छा तो ख्याल रखना'—नंदकुमार ने पूरी दृढ़ता से आदेश देते हुए कहा—'सुनो, बड़े बाबू क्या हुकुम देते हैं।'

हवेली के बिचले खंड में स्त्रियों का आवास था। वहाँ रौस में चौगिर्द चिक पड़ी रहती। इस कांड की ओर घर भर की स्त्रियों का ध्यान आकृष्ट हो गया, क्योंकि महेस बड़ा मुटासा हो गया था, सबका कहना टाल जाता था। वे सभी रौस में की चिक से नीचे देखने लगीं। इस कारण कोई यह संदेह न कर सका कि विमला यह कौतुक देखने के लिये नहीं वरन् स्वर के पाश में बँधकर खिंच आई है। वह पुलकित हो गई थी। उसकी आँखें महेस को नहीं देख रही थीं; वे उसे खोज रही थीं जिसने महेस का मान मर्दन किया था। किंतु इसमें वह विफल रही। उसने नीचे के दालान में जहाँ कारबार होता था, केवल एक पुष्ट और सुडौल साँवला पहुँचा देख पाया जिसके उदार पंजे में स्वास्थ्य की गुलाबी पखड़ियों की तरह सुंदर-स्निग्ध नख चमक रहे थे। अस्तु, विमला को महेस के अभिमान-भंग से

प्रसन्न भीड के साथ हठात् अपना तन घसीट ले जाना पडा। किंतु दिनभर उसका मन किसी काम मे ठीक-ठीक न लगा , हृदय दूनी गति से धड-कता रहा। रह-रहकर उसी कठ को पुनः सुनने की इच्छा होती, और उठती एक कल्पना जो उस स्वर का रूप से संबध जोडना चाहती।

रात आई, सब कामों से निवृत्त होकर कृष्णमुरारी अपनी पत्नी के कमरे मे गया। उसका नित्य-नियम था, दिन भर की मुख्य-मुख्य बाते विमला को सुनाना। इसे वह अपनी पत्नी से हार्दिकता-स्थापन का साधन ही नही समझता था, अपितु इसके द्वारा उसके प्रति अपनी अधीनता भी व्यक्त करता। आज की बातो मे स्वभावतः नदकुमार की चर्चा मुख्य थी—'बडे काम का आदमी मिल गया है। मै तो कारबार और लेन-देन के चक्कर मे पडा रहता हूँ , घर के काम-काज की देख-रेख बिलकुल नही हो रही थी। तुम्हारे देवर लोग जैसे हैं, जानती ही हो।'

'क्या कहना है। काम बिगाड न डाले, बनाने की कौन कहे आज महेस का क्या हो रहा था ?'—विमला का कुतूहल अधिक न रुक सका।

'मै तो बता ही रहा था। मैंने तीन-तीन बार बुलाया, सुनता ही न था। रोज का यही हाल है। जब से नंदकुमार ने सरसेटा है, बचाजी दुम दबाए-दबाए काम कर रहे हैं।'

'आज घर भर को खुशी है। सबकी आँखो का काँटा हो रहा था महेसवा। बिना पैसा पाए तो हम लोगों का काम ही नही करता था।'

...विमला किसी न किसी बहाने नदकुमार के बारे मे बात करते अघाती ही न थी—'अच्छा, इनका नाम नदकुमार है ?'—'कितना सुदर नाम पाया है।'—उसका मन कहने लगा—'कितनी तनखाह पर रक्खा है ?'—'कौन बिरादरी ?'—'क्या उमर है ?'—'ऊँचा हुआ आदमी तो है न ?'—'बहुत मुँह न लगा लीजिएगा'—'बिना महीना-दो महीना देखे सब काम उन्हीं पर न छोड बैठिएगा।'—इत्यादि, जिज्ञासा, उपदेश, आदेश-लपेटे वचनो की ओट मे कोई आध घटे तक विमला नदकुमार का ही प्रसंग बनाए रही।

धीरे-धीरे इस कोठी का सारा काम नदकुमार के हाथ मे आ गया। छोटे-बडे सभी उसके काम से प्रसन्न थे, नौकरों पर पूरी धाक थी। घर की व्यवस्था जो ढीली पड गई थी, बिलकुल ठिकाने आ गई। विमला को ऐसा लगता कि उसकी तूफान मे पडी नाव का कर्णधार आ पहुँचा। लाख करने पर भी उसका मन हाथ से निकल ही गया। उसने अपने को कितना समझाया-बुझाया, किंतु आदर्श के जिस बाँध को वह बडा ठस समझती थी वह अतत. बालू का ही निकला।

उसकी हृत्तत्री नदकुमार के कठ से मिलकर बजती, उसकी आँखे उस अवसर की खोज मे रहती जब उन्हें नदकुमार की एक झलक मिल जाय, बिना इसके उन्हें चैन न पडता। साँवला रंग, मझोला क़द, भरा हुआ शरीर, बडी-बडी सतेज पक्ष्मल आँखों में मद और सौंदर्य के साथ-साथ यथेष्ट शील और सयम, तनिक-तनिक घुँघराले और कुछ विरल काले बाल, सुढार हँसता चेहरा, उठी हुई नासा, सीधा-सादा पह-नावा, काम मे फुर्ती, मुस्तैदी और ज़िम्मेदारी, व्यवहार मे शिष्टता के साथ

बेलौसपन, स्वभाव मे सचाई और ईमानदारी, उसके रूप और गुण दोनो ही प्रभावोत्पादक थे। फिर विमला के लिये तो वह आराध्य था। किंतु उसी प्रकार जैसे एक अस्पृश्य के लिए कोई देवता होता है, जिसका परम भक्त होते हुए भी वह मंदिर-प्रवेश के अधिकार से वचित रहता है, उसे केवल ध्वजा-दर्शन से सतोष करना पडता है। विमला ने अपनी मूक-पूजा के अतिरक्त कोई अनधिकार चेष्टा न की थी। नदकुमार की वाणी सुनकर और कभी-कभी एक झलक पाकर ही उसकी साध पूरी हो जाती।

परतु नियति ने उसे इससे भी अधिक सुयोग प्रदान किया। बडे बाबू ने क्रमशः नदकुमार को अधिकार दिया कि वह स्त्रियो के काम-काज के सदेसे ऊपर सीढी पर जाकर सुन लिया करे। अक्सर उन लोगो को सौदा-सुलुफ मँगाना रहता। वे नंदकुमार को किवाड की ओट मे खडा करके किसी मज़दूरनी के माध्यम से बात कर लेती। इस माध्यम मे स्त्रियो की ओर से 'मुनीमजी से कहो' और मुनीमजी की ओर से '.. बहू से कहो' की टट्टी भर रहती, अन्यथा आपस मे आलाप ही होता। अब आए दिन विमला चीज-बस्त की फर्माइश देने लगी। कृष्णमुरारी को इससे बडा सतोष था। उसकी कामना एकमात्र यही थी कि उसकी तरुणी भार्या का हृदय हँसता-खेलता रहे। वय के कारण अनमेल व्याह मे प्रायः ऐसा समय आ जाता है जब पत्नी को राजी रखने के लिये पति आँखो पर पट्टी बाँध लेता है।

जो हो, विमला और नदकुमार का यह परोक्ष-परिचय क्रमशः बढता जा रहा था, और किंवाडो की ओट तथा दासी का माध्यम धीरे-

फर्माइशें भी लेता गया था। विमला ने जो सामान मँगाया था उसे उसने ख़ूब चुन-चुनकर लिया। वह सब सामान जब विमला के सामने आया तो, उसने स्वभावतः एक-एक चीज़ पसद की। उसे ऐसा जान पडा कि स्वयं उसने उनका चुनाव किया हो, वह पुलक उठी। वह किवाड की ओट मे थी, दूसरी ओर था नदकुमार, बीच मे पल्ला पकडे खडी दासी सुहागी सदेश भुगता रही थी। उसी ने चीज़ें मालकिन के सामने रखी थी। इसी समय नदकुमार ने दासी को सबोधित किया—'और सुहागी, नई बहू से कहो कि एक चीज़ हम अपने मन से लेते आए हैं। यह हमे बहुत पसद आई, इसलिये बिना हुक्म के ही ले लिया।'—और उसने अपने हाथ पल्ले के आगे बढा दिए। सुहागी तनिक पीछे हट गई। विमला ने देखा कि दफ्ती का एक बडा बकस है। खुला हुआ। उसकी पसीजती हुई सुकुमार गुलाबी हथेलियाँ जिनकी छरहरी उँगलियाँ काँप रही थी, ललककर आगे बढ गईं। बकस थामते समय इन उँगलियो ने पलमात्र के लिये नदकुमार के हाथो को छू लिया। विमला का समूचा आपा आनदातिरेक से भन्ना उठा। साथ ही उसने देखा कि बकस मे कचकडे का एक बहुत बड़ा बबुआ है; इतना बडा जैसा उसने पहले न देखा था—कोई छः महीने के बच्चे के बराबर। उसकी मातृ-ममता उभर उठी—'अले मुन्ना! तुम कहाँ छे आ गए?'—बकस से निकालकर छाती से लगा के विमला उसे चूमने लगी। दुलारने लगी। इस आनद की तरग नदकुमार के हृदय तक लहरा रही थी। कचकडे के इस मूक बबुए ने क्षण भर मे एक सुखी कुटुब की सृष्टि कर दी।

(४)

. विमला के लिये उस दिन के कुछ क्षण जीवन के चिर-संबल बन गए। किंतु भाग्य के देवताओं से अधिक विलल्ले खिलवाड़ी विरले ही होंगे। उससे बढ़कर भी वे क्रूर हैं। उन्होंने बनाया भी तो ताश का घर. तिस पर वे उसका बना रहना देख न सके, शीघ्र ही स्वयं उसे ढाह भी दिया! बात का बतंगड़ नहीं करना है—नंदकुमार का जीवन बड़ा व्यस्त हो उठा था। कोठी के काम से उसे देस-परदेस एक किए रहना पड़ता, आधी जिंदगी रेल, लारी पर बीत रही थी। अनाज की ख़रीद के लिये वह लारी से कहीं देहात जा रहा था। इसके बाद वही हुआ जो हम समाचारपत्रों में नित्य पढ़ा करते हैं—लारी किसी पेड़ से टकराई, कितने ही बुरी तरह घायल हुए और सात ने तो अपनी जान से हाथ धोया, जिनमें नंदकुमार भी था।

इस अतर्कित दुर्दैव की प्रतिक्रिया कृष्णमुरारी के सारे परिवार पर कैसी हुई, उसके विवरण की आवश्यकता नहीं। नंदकुमार को समूचा घर जैसा मानता था उसी से उसका अनुमान किया जा सकता है। किंतु, विमला का तो संसार समाप्त हो गया। जबसे वह बबुआ उसकी गोद में आया था, उसका नित्य-नियम था कि एकांत पाते ही अपनी उस नन्हीं-सी आत्मा को भूरि-भूरि वात्सल्य से सींचा करती।

किंतु उस दिन एकांत में जब तक समय मिला, विमला उस अनाथ शिशु को पथराई पागल आँखों से, टक लगाए देखती भर रही। उसका दारुण दुःख रोने-पीटने की सीमा से कहीं परे था। लोक-लज्जा के कारागार में हृदय हलका करने की स्वतंत्रता भी कहाँ थी? विमला

का बाहरी ससार ज्यो-का-त्यो चलता रहा। प्रतिदिन माँग मे वह सिंदूर भरना जो उतर चुका था—आह, असीम यत्रणा! वह उस सिदूर से यही माँगती कि 'तुम अगार बनकर मुझे फूँक दो'।

भीतर-भीतर पाल बढता जा रहा था। दुःख अंतस को ही चूसकर रह जाय सो नही, भीतर साफ करके वह बाहर हाथ लगाता है। उसे जितनी तहों मे दबाओ उतना ही ऊपर आ जाता है। धीरे-धीरे विमला की आधि ने व्याधि का रूप धारण कर लिया। तीसरे पहर हाथ-पाँव और आँख मे जलन होने लगी, सिर मे दर्द रहने लगा और कभी-कभी खाँसी आने लगी। भूख मारी गई और शरीर सूख चला। रोग को आते किसी ने न देखा, किंतु बढता सबने। विमला क्षय से पड गई। पुराने विचार और रुपए के ज़ोर से जो कुछ किया जा सकता है, उसमे कृष्णमुरारी ने कोई बात उठा न रखी। किंतु जहाँ विज्ञान के नए-से-नए साधन कठिनता से सफल होते हैं वहाँ जर्जरित अस्तव्यस्तता की क्या चलती?

.. विमला खाट से लग गई है। रोग की हथकडी-बेडी से जकडा उसका पजर तनिक भी हिल-डोल नही सकता—केवल उसकी बुझती हुई उजडी आँखे इधर-उधर फिरा करती हैं, किसी के सग लगी-सी। पाँच-सात दिन से उसका स्वर भी बिलकुल छीज गया है। कृष्णमुरारी पर जो बीत रही थी, वही जानता, किंतु अपनी व्यथा विमला पर प्रकट होने नहीं देता। बराबर प्रसन्न मुख से परिचर्या मे लगा रहता और ढाढस बँधाया करता। उसकी ऐसी बाते सुनकर विमला की मुख-मुद्रा ऐसी हो जाती मानो वह विश्वास कर रही हो।

किंतु आज उसने आँख के इशारे से कृष्णमुरारी को अपने बहुत निकट बुलाया। पाँयते सुहागी बैठी थी, उसे इंगित से हटाकर, बड़ी कठिनता से घुटती हुई, टूटी साँसों मे साँय-साँय बोली—'आप मुझे नही, अपने ही को धोखा दे रहे हैं। मै सब समझती हूँ। अपना यह हाल न कर डालिए, मेरे पीछे। मुझे मरने दीजिए—मै इसी लायक़ हूँ। इसी मे सुख भी है मुझे। इस पाप का दड मुझे जनम-जनम मिलना चाहिए कि मैंने अपना मन आपसे एक मिनट को भी न मिलाया। आपकी थाती उठाकर दूसरे को दे दी। कौन विश्वासघातक हो सकता है इससे बढ़कर? अपने किए का फल भोगने दीजिए इस पापिन को'—उसकी रीती आँखे भर आई थी। आँसू की ओट से उनमे की टिमटिमाती चितवन की लौ कही दूर लगी हुई थी।

कृष्णमुरारी के लिये और सुनना असभव था। यदि उसका हृदय उमड न आया होता तो वह विमला को मना करता। किंतु विमला को इससे अधिक कहना ही न था, अतएव उसने स्वय अपना मुँह सदैव को बद कर लिया।
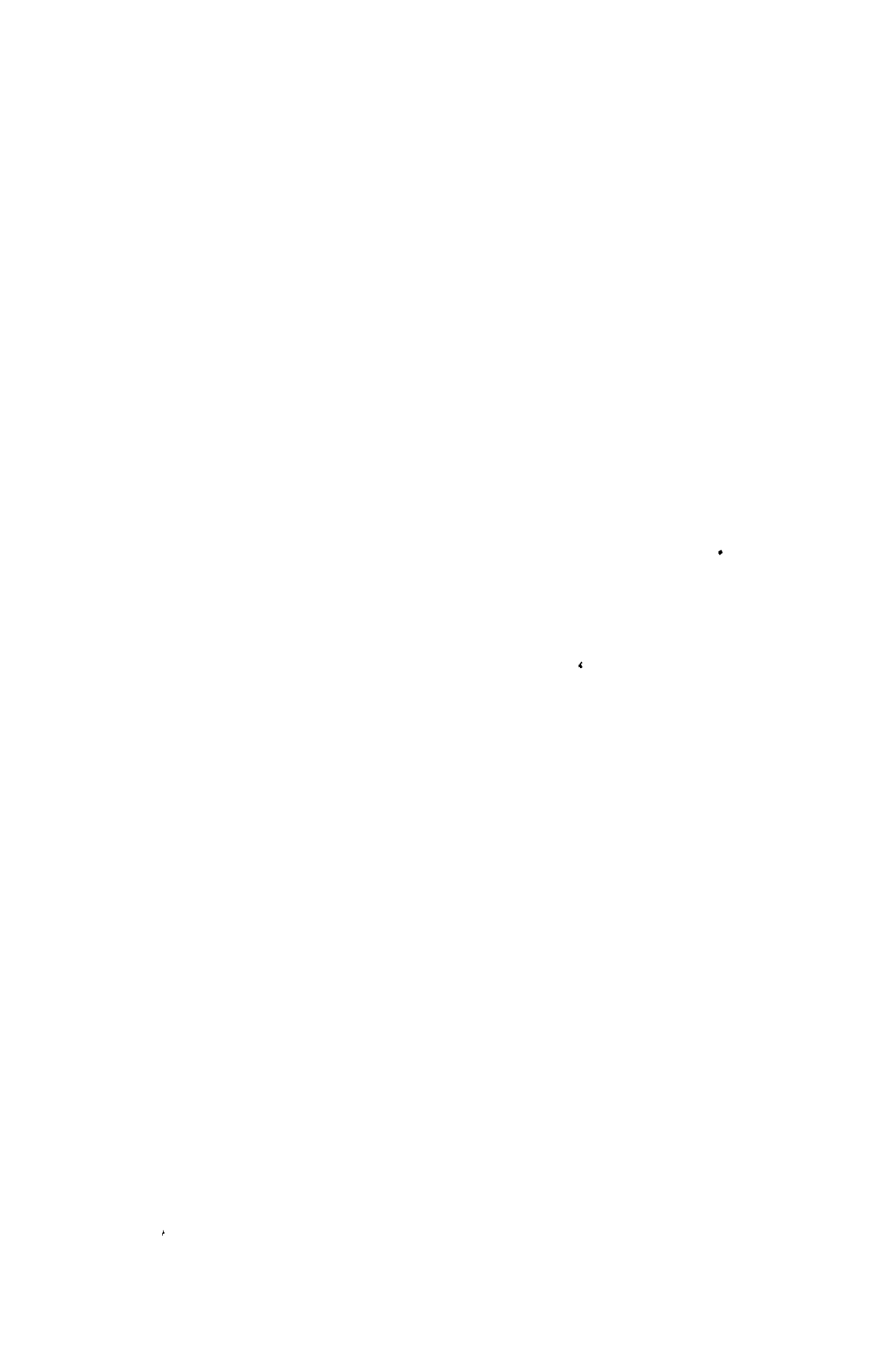
भेद

तारा को ऐसा लगा मानों वही आठ-दस बरस पहले का लाले उसे उपद्रव का पाठ पढा रहा हो और वह, मंत्र की भाँति एक एक अक्षर ग्रहण कर रही हो।......

तन पर खादी का लम्बा चोला, कटि मे चौडी नागपुरी किनार-
दार पृथ्वी की प्रायः बुहारी लगाती हुई धोती, सिर पर
शमी साफा धारण किए, ऊपर से दोहरा किया हुआ कश्मीरी अलवान
ओढे, एक भव्य आकृति निश्चित गति से अयोध्या रेलवे स्टेशन मे
प्रविष्ट हुई। उसका सभी पहनावा जोगिया रग का था। गले मे महीन
दानेवाली रुद्राक्ष की माला, जिसका कुछ अश अलवान के अवगुठन
मे से दर्शन दे रहा था, आँख पर सुनहली कमानी का डबल-तालवाला
चश्मा, हाथ मे चाँदी की फुलियोवाली पास-पास गाँठदार बाँस की चम-
चमाती छडी, पैरों मे चप्पल, इस आकृति के शृगार को पूरा कर रहा था।
इस व्यक्ति का रग गोरा नहीं कह सकते। किंतु अच्छे स्वास्थ्य के,

कारण सहज-सहास चेहरा मूँगे की तरह लाल था। ऊँचा पूरा क़द, चमकती हुई कालापन लिए भूरी आँखे, घनी लबी दाढ़ी, जिसका अधिकाश पक चुका था, सुगठित शरीर देखकर दर्शक हठात् आकृष्ट हो जाता। जिसे प्रणाम की श्रद्धा न हो वह भी एक दो निगाह डाले बिना न रह सकता।

इनके पीछे एक छोटा-सा दल था, जिसमे के कुछ व्यक्ति गृहस्थ और कुछ इनके शिष्य वा अनुचर जान पड़ते थे। इनमे से एक के कंधे पर स्वामीजी का बिस्तर और हाथ मे अटैची थी और दूसरे एक-हरे शरीरवाले के हाथ मे एक छोटा-सा हैंडबेग तथा एक बढिया मुज़फ्फरनगरी कबल था। इस अनुगामी की अवस्था तीस के भीतर थी। वह सारी मडली मे फ़ुर्तीला और चटपट था। उसने स्टेशन मे आकर ठिकाने से असबाब रखवाया। स्वामीजी ने सबसे पहले तारघर से अपनी सोने की जेबघडी का, जो उनकी मिर्जई के भीतर एक दूसरे हृदय की तरह खुटखुट कर रही थी, आधे मिनट का अंतर दूर किया। उपरात वे अपनी मंडली मे आए, जो उन्हे देखते ही खडी हो गई। आग्रहपूर्वक उसे पुनः बैठाकर वे प्लेटफार्म पर टहलने लगे। जाडे की रुत थी, आधी रात का समय। ट्रेन आने मे अभी देर थी, इसलिये प्लेटफार्म पर कोई भीड न थी, जो दो-चार यात्री थे भी वे सर्दी के मारे ओढे-पोढ़े सिकुडे-सिकुडाए पडे थे।

स्वामी सहजानद का नाम युक्तप्रांत के हिदू नगरो और तीर्थों मे प्रायः सुना जाता है। यद्यपि इन नगरो के जीवन मे वह नवागंतुक हैं, फिर भी अपना एक निश्चित स्थान बनाते जा रहे हैं। कही उनकी

प्रेरणा से कुएँ बन रहे हैं, कहीं चिकित्सालय खुल रहे हैं, कही पुरानी गोशाला का पुनः सगठन हो रहा है, कही हवन-अनुष्ठान हो रहे हैं और कही व्यायाम शालाएँ स्थापित हो रही हैं, इत्यादि। उनका किसी दल से विरोध नही, बल्कि उनकी यही चेष्टा रहती है कि सभी दलवालो से उनका प्रेम रहे और सभी उनके समारभों मे भाग ले। तो भी लोग उनके विषय मे तरह-तरह के आरोप करते रहते हैं, किंतु अभी तक कोई भी ऐसे लांछनो को प्रमाणित नही कर पाया है और लाछन जब प्रमाणित नही होता तो यश और भी निखर उठता है। अतः स्वामीजी का रग उखड़ने के बदले दिन-दिन जमता जा रहा है।

यही स्वामी सहजानद इस समय प्लेटफार्म पर अकेले टहल रहे हैं। उसके एक छोर से दूसरे छोर तक के उन्होने दो फेरे लगाए। तीसरे फेरे मे जब वह प्लेटफार्म के पूरबी सिरे के निकट पहुँचे, तो ओस से धुँधले लप के प्रकाश मे सामने से एक दूसरा व्यक्ति आता दिखाई दिया। उसकी सूरत, कोट-पतलून और भारी चढे कालर के ओवरकोट तथा टोप के झुके हुए छज्जे मे विलीन थी। बाएँ हाथ मे चमोटीदार पतला बेंत था और दहना हाथ ओवरकोट की जेब मे गायब था। स्वामीजी की गति मे कोई बाधा न पडी। एक क्षण मे दोनों आमने-सामने थे।

× × ×

आगंतुक ने वह तार जो अभी स्वामीजी ने उसे दिया था, पढकर लौटाते हुए आश्चर्य तथा उत्साहपूर्वक कहा—"अच्छा, यह बात है! मेरे आदमी भी ट्रेनभर मे बिखरे रहेंगे।"

× × ×

जिस प्रकार छाया-पुरुष की भाँति वह व्यक्ति अंधकार से प्रकट हुआ था, उसी प्रकार उसमे गुम हो गया।

(२)

नाटक की यवनिका उठते ही जैसे, एक नई दुनिया एवं सजीवता सामने आ जाती है, उसी प्रकार सोया हुआ अयोध्या स्टेशन भी मुग़ल-सराय से लखनऊ जानेवाली, धडधड़ाती हुई, पार्सल इक्सप्रेस के पहुँचते ही स्पदित हो उठा। मुसाफिरों की असयत और अस्तव्यस्त चढ-उतर एव धक्कधक्के, कुलियो की रेल-पेल, रेलवे कर्मचारियों की स्वार्थपूर्ण अ-शिष्टता तथा सौदा बेचनेवालो की तरह-तरह की आवाज़ो और 'यात्रा-वालो' की हैकडी के दृश्य का बाज़ार कुछ मिनटो के लिये गरम हो उठा।

किंतु सहजानद के लिये मानो यह सब कुछ न था। वे अपनी निरपेक्ष निर्द्वद्व गति से इंटर क्लास की ओर बढे। आगे-आगे उनका चलतापुर्ज़ा शिष्य भीड चीरता हुआ चल रहा था। जब वह डब्बे के सामने पहुँचे, तो एक व्यक्ति उसमे से उतर रहा था; मध्यवित्त गृहस्थ जान पडता था। स्वामीजी पर निगाह पडते ही वह ललकके ऊँचे स्वर मे "अरे!..... गुरुजी!" कहता हुआ कूदकर उनके पैरों पडा। स्वामीजी ने उसकी पीठ ठोकी और उठाकर बोले—"चलो तुमसे भी मिल लिया; इसी की चिंता लगी थी।"

"लीजिए, आपकी इच्छा हो और काम पूरा न हो, अच्छा बिरा-जिए डब्बे मे आपके मन माफिक जगह है।" पुनः उनके चरण छूकर वह एक बगल खडा हो गया।

चलतापुर्ज़ा ऊपर चढकर उस लबे डब्बे के एक खाली बेंच पर कबल

बिछाने लगा। स्वामीजी ऊपर जाकर प्रवेश-द्वार की खिडकी मे से धड निकाल के खडे हो गए, क्योकि और कोई चढने-उतरनेवाला न था। प्लेटफार्म पर उनकी भक्त-मंडली हाथ बॉधे खडी थी। उनसे दो-चार शब्दो की बातचीत करके रेल की सीटी के साथ, "जै शिव ओंकारा" के तुमुल निनाद मे, स्वामीजी अपने आसन पर आ विराजे, साथ ही गाडी भी लबी हुई।

डब्बे मे विशेष भीड तो न थी, किंतु बेचो का अधिकाश, गरम ओढनो के भीतर टॉग पसारकर सोए हुए मुसाफिरो ने छेक रक्खा था। एकाध व्यक्ति बैठे-बैठे ऊँघ रहे थे। सहजानद को भी यही करना पडता, यदि उन्हे अपने भक्त की जगह न मिल गई होती। उनके पॉव की ओर एक युवक बैठा था। हो सकता है, वह बीस बरस के ऊपर का रहा हो। किंतु उसकी अवस्था का अनुमान कुछ कठिन था, क्योकि एक तो उसका कद नाटा था, दूसरे वह मकुना सा था। उसका रग गेहुँए से कुछ खुलता हुआ था। नीद से उसकी गर्दन झुकी हुई थी और बडी-बडी ऑखे मुँदी पडती थीं। वे जब कभी खुल जातीं, तो उनकी गहरी बादामी पारदर्शी पुतलियों से एक अद्भुत तेजी, चमक, साथ ही मार्दवता की झलक मिल जाती। नींद से उनके कोए रॉते हो रहे थे। सिर पर बडे-बडे बाल थे, जो पृथुल लटो मे कान के तनिक नीचे तक पहुँचते थे, इस समय वे अस्तव्यस्त हो रहे थे। कश्मीरी पट्टू का ढीला-ढाला कुरता, ऊपर से एक भारी धुस्सा और मोटी किंतु साफ खादी की नीची-नीची धोती उसका परिधान था।

चलतेपुर्जे ने उससे तनिक और सिमटने को कहा। यों ही वह दब-

कर बैठा था, फिर भी उसने चार-पाँच इंच की जगह कर ही दी। अब चलतेपुर्ज़े ने उसके बगलवाले पथिक को झकझोरा और कर्कश स्वर में टाँग सिकोड़ने को कहा। उसने कुछ बड़बड़ाते हुए तनिक-सा पाँव बटोर लिया। इस प्रकार चलतेपुर्ज़े को कोई एक फुट की जगह मिल गई और वह युवक से ठसकर बैठ गया।

इतना होते-होते गाड़ी की गति धीमी पड़ने लगी; क्योंकि फ़ैज़ाबाद स्टेशन निकट था। फ़ैज़ाबाद मे आशंका के विरुद्ध केवल दो मुसाफिर इंटर मे आए—दोनो ही स्त्रियाँ थी। एक अधेड़, दूसरी की अवस्था अठारह-उन्नीस की रही होगी। नवीना अपने पहनावे से किसी विद्यालय की छात्रा जान पड़ती, प्रौढा उसकी अभिभाविका, उनका असबाब था—एक बड़ा बिस्तर, एक मझोला ट्रंक और एक डोलची; नवीना के हाथ मे एक अटैची भी थी।

गाड़ी मे जगह न देखकर वे सकुच-सी गईं। किंतु संभवतः वे ज़नाने डब्बे मे न जाना चाहती थी। आजकल ज़नाने डब्बे तादृश सुरक्षित नही रहते। अतः उन्होने कुली से अपना बिस्तर एक ओर रखवाकर, उसी पर बैठने का उपक्रम किया। किंतु इसकी नौबत न आई। खादीधारी युवक से चलतेपुर्ज़े ने कहा—"चलिए, हम लोग बिस्तर पर बैठ जायँ। उनके लिए यहाँ जगह कर दे।" उधर उनीदे स्वर मे गुरु जी ने कहा—"परमानंद, मेरा कंबल भी तनिक मोड़ दो, तो उनके लिये अधिक जगह हो जाय।"—और अपना पैर थोड़ा समेट लिया। इस प्रकार उनके लिये स्थान करके परमानंद और युवक बिस्तर पर जा बैठे। जाते-जाते उसने तरुणी पर एक दृष्टि डाली, मानों उसे चीन्हना चाहता हो।

बिस्तर पर बैठकर अर्द्ध-निमीलित नेत्र से वह जाग्रत स्वप्न देखने लगा। कोई दस बरस पूर्व की कतिपय स्मृतियाँ सिनेमा के बोलपट की भाँति उसके सामने अभिनय करने लगी—

(३)

चुनार मे 'मुहाना' मुहल्ले के एक छोटे दुमज़िले मकान मे स्थानीय हाई स्कूल के हेडमास्टर रामस्वरूप टडन किराए पर रहते हैं। बगल के खपरैल वाले मकान के किराएदार उसी स्कूल के सेकेंड पंडित श्री शभुदत्त त्रिपाठी हैं। हेडमास्टर साहब के नौ-दस बरस का एक लडका है, जिसका दुलार का नाम लाले है। उसकी दो बहने हैं—एक पॉच की, दूसरी तीन की। पडितजी की ज्येष्ठ सतान आठ बरस की कन्या तारावली है, जिसका डेढ बरस का इकलौता छोटा भाई मुन्नू है।

दोनो परिवारो मे यथेष्ट सद्भाव है। नित्य सध्या को पंडितजी और हेडमास्टर साहब की बैठक होती है। तारा और लाले मे भी हार्दिक सख्य है। लाले एक नबर का ढीठ, निडर, ऊधमी और दुःसाहसी है। स्कूल मे और राह चलते बिना बात लडको से लड पड़ना तथा मारपीट कर बैठना, ऊपर से दोष उन्हीं पर मढना; उनकी कापी, किताब बिगाड देना; अक्सर मास्टरो से उलझ पडना, ज़रा सी लाग के सहारे इमारतो पर दो-दो, तीन-तीन मजिल चढ जाना; एक-एक खड से कूद पडना, खपरैल-खपरैल मुहल्ले भर घूम आना; बढी गगा मे घटो तैरना इत्यादि, इत्यादि उसके स्वभाव मे समिलित हो गया है। अक्सर स्कूल से, मास्टरो की ऑख बचाकर उडनछू हो जाता और इधर-उधर शैतानी किया करता है। किंतु हेडमास्टर साहब का लडका

और छोटी-सी जगह ; बोले तो कौन ? तिस पर से वह जैसा शरारती है, पढने मे भी वैसा ही फर्द है। सदा अपने क्लास मे आगे रहता है। इस कारण भी मास्टर तरह देते हैं।

तारा भोले स्वभाव की है। पंडितजी उसे घर पर ही शिक्षा देते हैं। वे कुछ-कुछ आर्य समाजी विचार के हैं, उनकी इच्छा है कि उसे तनिक और बोध करा लेने पर, किसी कन्या-गुरुकुल मे भेज दे। वह भी पढने मे अच्छी है। फिर भी अक्सर उसे पंडितजी का कोप-भाजन बनना पड़ता है, क्योंकि स्कूल से टरक देने पर, लाले के प्रोग्राम का एक अंग यह भी रहता है कि दोपहरी मे तारा के यहाँ पहुँचना और घटे-दो घंटे उसके सग खेलना। जितनी देर वह रहता है तारा भी ऊधमी हो जाती है। भले ही पडितजी की ताडना के समय वह पछ-ताय, क्योंकि सरल स्वभाव के होने पर भी पडितजी न पढनेवाले या उपद्रवी विद्यार्थी के लिये बडे कठोर और 'मरकहे' हो जाते हैं। फिर भी वह अपने को रोक नही सकती और जिस दिन लाले का फेरा उधर नही लगता, उसकी तबीयत सूनी और उचाट-सी रहती है।

पंडितानी लाले के ऊधम फूटी आँखों भी नहीं देख सकती—जब सब गृहकार्य से छुट्टी पाकर उनके तनिक-से विश्राम का समय आता है, तभी हेडमास्टर साहब और उनकी पत्नी का लाडला आकर सारा घर सिर पर उठा लेता है। इससे भी अधिक कष्ट उन्हे उसकी इस हरकत से होता है कि वह मुन्नू को खिझा देता है। तो भी वह कुढकर ही रह जाती है, क्योंकि लाले हेडमास्टर साहब का लडका न ठहरा। यद्यपि

हेडमास्टर साहब की पत्नी से उनका बहनापा है, फिर भी, उन तक से कुछ नहीं कह पातीं।

पं० शंभुदत्त नियमपूर्वक नित्य प्रातःकाल, होमियोपैथिक दवा बाँटते हैं। इस कारण उनके यहाँ समय पर एक छोटी-सी भीड इकट्ठी हो जाया करती है। लाले भी कभी-कभी इसका तमाशा देखने आ बैठता है। एक दिन उसे भी डाक्टर बनने की सूझती है। दियासलाई की खाली डिबियाँ बटोर के, किसी मे चूना, किसी मे रगीन चाक-बत्ती की बुकनी, किसी मे सुर्खी, किसी मे राख, किसी मे कोयले का चूर आदि भरकर वह दस-बारह दवाइयाँ तैयार करता है और दोपहर को स्कूल से टरककर पडितजी की बैठक मे उनका वितरण करने लगता है। तारा रोगी बनती है जो कभी किसी, कभी किसी रोग का अभिनय करती है और भिन्न-भिन्न डिब्बी से दवा पाती है। फिर डाक्टर लाले उसे पथ्य आदि की व्यवस्था देते हैं। इस खेल से कुछ देर तक उनका अच्छा मनोरजन होता है। अततः डाक्टर साहब अनुभव करते हैं कि उनके रोगियों की सख्या इतनी बढ गई है कि बिना एक कपाउडर के काम नही चल सकता। अब खेल का क्रम बदलता है।

तारा कपाउडर बनती है और अपनी गुडियो को मरीज बनाती है तथा उनका अभिनय भी आप करती जाती है। किंतु इसमें एक अडचन उपस्थित होती है। डाक्टर जो दवा बताता है उसे देने मे कंपाउडर से गलती हो जाती है और उसे झिडकी सुननी पडती है। इस बला से बचने के लिये तारा प्रस्ताव करती है कि डिब्बियों पर नबर डाल देना चाहिए। वह आले पर से पंडितजी की कलम दवात

उतारकर नंबर पूछने लगती है। लाले कहता है—"जितनी देर में एक-एक दवा को देखकर तुम्हें नंबर बताऊँगा उतनी देर मे तो ख़ुद ही लिख दूँगा।" इस पर दोनो ओर से कुछ देर तक 'नही हम', 'नहीं हम' और छीन-झपट होता है। अंततः तारा का हाथ मरोड़कर लाले स्याही, क़लम छीन लेता है।

तारा का चेहरा तमतमा उठा है, भृकुटि चढी हुई है, ओठ फड़क रहे हैं, तो भी शारीरिक निर्बलता के कारण वह विवश है। किंतु ज्योंही लाले दावात मे क़लम बोरने चलता है, तारा किचकिचाकर एक ऐसा हाथ मारती है कि वह (दावात) दूर जा गिरती है। इस प्रकार वह विजयी तो हो जाती है, परतु बैठक के बिछायत और फर्श के एक अश पर रोशनाई का छिड़काव हो जाता है और इधर-उधर टूटी दावात के टुकड़े बिखर जाते हैं।

यह पुनः लाले की जीत हुई और बिना परिश्रम जीत हुई। बिना परिश्रम की जीत से कौन नहीं फूल उठता? वह आनद की किलकारी मारकर तारा से कहता है—"आने दो पडितजी को; देखो तुम्हारी कैसी पूजा कराता हूँ।"—परतु जब उसकी दृष्टि तारा पर पड़ती है, तो उसका ढीठ और साहसी हृदय भी धक् हो जाता है। तारा को मानो काठ मार गया हो। उसका रग एक क्षण मे पीला पड गया है और आँख पथरा गई है। साथ ही व्यतीपाती लाले भी कुछ और हो जाता है। लपककर उसके दोनो हाथ मृदुता से थाम लेता है तथा दायित्वपूर्ण ममता से आश्वासित करता है एव विश्वास दिलाता है—"तारा, तुम रत्ती भर न डरो। जब दावात तुमसे फूटी ही नहीं, तो तुम

पर आफ़त कैसे आवेगी ?" तारा को प्रतिघात होता है और वह रो पड़ती है। लाले उसके आँसू पोंछकर, फैले हुए काँच के टुकड़े तत्परता से बीनने लगता है। इसी समय बाहर की कुंडी खटकती है। पंडितजी स्कूल से लौट आए हैं। तारा फिर सहम जाती है और भीतर भाग जाना चाहती है। किंतु लाले उसे वहीं रहने का आदेश देता हुआ किवाड़ खोलने चला जाता है और साँकल उतारकर बिना पंडितजी के भीतर घुसने की प्रतीक्षा किए, चटपट लौटकर पुनः अपने काम मे प्रवृत्त हो जाता है।

पंडितजी जहाँ दैनिक पिसाई के बाद निश्चिंत विश्राम की प्रत्याशा लेकर घर मे पैठे थे, वहाँ बैठक का यह रूप देखकर गरम हो उठते हैं; कठोर स्वर मे पूछते हैं—"यह क्या, तारा ?" किंतु तारा के, जो झुकी हुई बैठी थी, मुँह खोलने से पहले लाले खड़ा हो जाता है और उनका सामना करते हुए दृढ़ता से कहता है—"मेरा क़सूर है, पंडितजी।"

"तो क्या हुआ बेटा, पुराने विचार के लोग तो स्याही का गिरना शुभ मानते हैं"—पंडितजी जिस शीघ्रता से गरम हुए थे उससे भी जल्दी ठंढे पड़ जाते हैं, मानो कुछ हुआ ही न हो। लाले हेडमास्टर साहब का पुत्र जो ठहरा

स्वप्न भंग हुआ, दो-चार पल भी न लगे होंगे, ट्रेन ज्यों-की-त्यों चली जा रही थी। मुसाफ़िर सब उसी अवस्था मे थे। हाँ, वही जाड़े की रात का सबसे निबिड़ प्रहर था। केवल दोनो नवागताएँ उस ठिकाने बैठ चुकी थीं, जो उनके लिये ख़ाली किया गया था।

युवक सोचने लगा, युवती निश्चय वही तारा है और उसके सग की प्रौढा, उसकी बुआ जो कभी-कभी चुनार आया करती थी। उन दिनो सधवा थी, अब जान पड़ता है विधवा हो गई हैं। युवक की आँखें भर-सी आई। अतीत की जो घटना अभी उसकी स्मृति ने दुहराई थी उसके कुछ ही दिन बाद उसके पिता को कानपुर के एक अच्छे स्कूल की हेडमास्टरी मिल गई थी और तबसे लाले को पडितजी के परिवार के बहुत थोडे समाचार मिले थे, इस बीच उनके जीवन मे कितने ही उलट फेर हो गए हैं। अनेक मिले-जुले विचार युवक के मस्तिष्क मे तेज़ी से विलोडित होने लगे। उसने आँखे बद करके अपना मस्तक गाडी की दीवार से टिका दिया। परमानंद ऊँघने लगा था। नवागताएँ भी निश्चेष्ट थी। कुछ देर के लिये गाडी मे पूरी निस्तब्धता छा गई।

किंतु कुछ ही देर के लिये। दरियाबाद स्टेशन आया और वहाँ तीसरे के मुसाफिरो की एक टोली भरभराकर इस डब्बे मे घुस पडी। परमानंद हल्ला मचाता ही रहा, पर कौन सुनता है। उनमे के एकाध ने जो अपेक्षाकृत मुखर थे, कहा—"बाबाजी, कुछ दूर थोडे ही जाना है। हम लोग तो अगले ही स्टेशन पर उतर जायँगे। तब तक बैठे रहने दीजिए।"—और वे अपने असबाब की रक्खा-सँभाली करने लगे।

"कौन इनसे माथा मारे"—परमानद ने युवक से परिचय बढाते हुए कहा।

"बैठे रहने दीजिए। कितने ही बिना टिकट के सफर करते हैं। इनके पास तीसरे का टिकट तो है।"—युवक ने उदारता का उत्तर दिया।

टोलीवालो ने असबाब तो सम्हाल लिया था, किंतु जान पडा मानो उन्होने चुप न रहने का निश्चय कर रखा हो। इससे डब्बा अनुप्राणित हो उठा। एक यात्री अपने ओढने मे से कुछ भजन गुन-गुनाने लगा। एक अन्य उस बकवाद को बद कराने की व्यर्थ चेष्टा मे और भी अशांति फैलाने लगा। ऊपर से तबाकू के कडुए धुएँ ने और उपद्रव मचाया। कुछ लोग तो खॉसने लगे।

परमानद की नीद भी भाग गई थी। उसने युवक से बाते छेड दी—"आप तो आगे से आ रहे हैं, एक पूरी सीट पर क्यो नही दखल जमाया ?"

"मै जौनपुर मे सवार हुआ। उसके पहले से ही लोग बिस्तर लगा चुके थे।"

"अच्छा, मैने समझा था, काशीजी से आ रहे हैं।"

"ऐसा क्यो ?"

"वहाँ खादी का बडा प्रचार है और आप पक्के खादीधारी दीख पडते हैं।"

"आपका अनुमान बिलकुल ठीक है, स्वामीजी! पहले मै काशी मे था और खादी वही से पहनने लगा। किंतु अब जौनपुर मे रहता हूँ।"

"जौनपुर मे कहाँ ? मै भी जौनपुर रह चुका हूँ।"

"जी, मैं राजा.. ... ..के यहाँ रहता हूँ।"

"अच्छा. ....मै समझा था, कही शहर मे। मगर यह तो बताइए, राजा-महाराजा के यहाँ खादीधारी का क्या काम ?"

"राजा साहब कौसिल के लिये खडे हुए है। मै उनको ओर से

प्रचार करता हूँ। वेश के प्रताप से काम बन जाता है।"—युवक हँसने लगा। परमानद को भी मुसकराना पड़ा।

युवक कहता गया—"इस समय भी उसी सिलसिले मे लखनऊ जा रहा हूँ। नहीं तो, मै कहाँ का ड्योढे मे यात्रा करनेवाला।"

"हम लोग भी वही जा रहे हैं"—स्वामीजी का परिचय देते हुए परमानद ने कहा—"महाराज वहाँ एक दिन ठहरेंगे; वहाँ से प्रचार-कार्य के लिये एक पाक्षिक पत्र निकालने का विचार हो रहा है। उसके सबंध मे सहायकों से आवश्यक परामर्श करके आप खुरजे पधारेंगे। एक भक्त सेठ ने पत्र का अधिकांश व्यय देना स्वीकार किया है।"

"चलिए, इसी सुयोग से मुझे भी महाराज के दर्शन मिल गए।"

"आप भी हमारे सग आश्रम मे चलिए न। वहाँ महाराज का सत्सग मिलेगा। क्या ही अच्छा हो यदि आप भी महाराज की योजना मे भाग ले। ऐसे ही लोगो की तो उन्हे तलाश है।"

"मै तो अभी दो-तीन घंटे वेटिंगरूम मे पडकर सोऊँगा। दौड-धूप मे कई रात से नींद का हिसाब बिगड गया है। आज की दशा तो आप देख ही रहे है। जब तक भर नींद न सो लूँगा, कोई काम न कर पाऊँगा; दिन भर की कठिन दौड-धूप सामने है। इस बार क्षमा कीजिए।"

"तब तो और ठीक है। हमलोगो को भी सात बजे तक वेटिंग रूम मे रहना है। कानपुर से कुछ व्यापारी-महाजन महाराज की योजना के संबध मे आ रहे हैं। उनसे महाराज स्टेशन पर ही मिलना चाहते हैं, क्योंकि इसका विशेष प्रभाव पडेगा। फिर उन्हे संग लेकर आश्रम जायँगे। आप भी चलिए। वही से भोजन-पानी से निवृत्त होकर अपने काम मे लगिएगा।"

"क्षमा कीजिएगा। इस बार इतनी छुट्टी नही है। यही दो-तीन घटे चुरा सकूँ तो बहुत समझिए। जब इस चुनाव से छुटकारा मिलेगा, आपसे पत्र व्यवहार करूँगा। यदि उस समय आपके यहाँ आवश्यकता हुई तो, एक दिन की कौन कहे, प्रतिदिन ही आपका खाऊँगा।"—युवक ने विश्वास दिलाया।

इसके उपरात एक ने दूसरे को अपना पता दे दिया और वे पुनः बाते करने लगे। लखनऊ तक का रास्ता उन्होने गपशप मे काट दिया।

(४)

पाँच बजे तडके गाडी लखनऊ पहुँची। उस समय पूरी रात थी। प्लेटफार्म की भीड से निकलकर इटर वेटिंग रूम के बरामदे मे परमानद ने युवक को स्वामीजी के सामने उपस्थित करते हुए, उसका परिचय दिया। सहजानद ने उसके प्रणाम को प्रसन्नतापूर्वक, तनिक गरदन झुकाकर अगीकार करते हुए, एक छिपी हुई दृष्टि द्वारा उसे ऊपर से नीचे तक परताल डाला। फिर एकाध औपचारिक बाते करके वे वेटिंग रूम मे प्रविष्ट हुए। परमानद बाहर ही रहा। युवक ने भीतर चलने के लिये कहा, तो उत्तर मिला—"वहाँ अदब से रहना पडेगा। यहाँ टाँग फैलाकर सो लूँगा, जब तक कानपुरवाले नही आते।"

लखनऊ के इटर क्लासवाले वेटिंग रूम को जिन लोगो ने देखा है, वे जानते हैं, कि उसमे यात्रियो को कितना सुपास है। बडा हॉल, अच्छे कुर्सी-कोच, नहाने के अलग-अलग अवरोध। फर्स्ट और सेकेड क्लास के वेटिंग रूमों से उसमे विशेष अतर नही।

वेटिंग रूम मे इस समय सोता पडा था। विशेष भीड न थी, इसलिये स्वामीजी को एक आरामकुर्सी और युवक को एक कोच बिना किसी अडचन के मिल गया। फ़ैज़ाबादवाली दोनों महिलाएँ भी उतरकर आ गई थी। उन्होंने एक कबल फैलाया और अपने बिस्तर के बडल का ढासना लगाकर विश्राम करने लगीं। युवक कोच पर लबा होकर सो गया और सहजानद अपनी आराम कुर्सी के हत्थो पर पैर पसारकर ऊँघने लगे।

पॉच मिनट मे वेटिंग रूम पुनः निस्पद हो गया। युवक गहरी नींद मे सो गया। दोनो महिलाएँ भी ऊँघने लगी। स्वामीजी की ऑखे मुद्रित थी। किंतु छठा मिनट न बीता होगा कि उनकी आखे पूर्ण रूप से उन्मीलित हो गई और चारो ओर दौड लगाकर उन्होंने स्वामीजी को विश्वास दिलाया कि कमरे भर मे वही निद्रा-साम्राज्य के बाहर हैं।

अब वह धीरे से उठे और दबे पॉव युवक के कोच के निकट पहुँचे। तनिक ठमककर उन्होंने पुनः निश्चय किया कि वह सुप्त है न? जब उन्हे किसी प्रकार का सदेह न रहा, तो वह धीरे से उसकी ओर झुके। बडे हौले से उन्होंने उसकी एक लट गरदन पर से हटाई। उसके नीचे एक बडे घाव का चिह्न दीख पडा। मुँह बद किए हुए ही उन्होने सतोष का एक निःश्वास छोडा और चुपचाप कमरे के बाहर निकल आए।

बाहर, लंबी तानकर सोने के बदले चलतापुर्ज़ा पूर्ण जागरूक बैठा हुआ था। उसकी दृष्टि वेटिंग रूम के दरवाज़े पर गडी हुई थी। मानो

कोई श्वापद अपने अहेर की ताक मे बैठा हो। गुरुजी को देखते ही वह चट उनके पास आ खडा हुआ।

"दौलतअली, हमारे मुखबिर की बात ठीक निकली। यह 'अगारा' ही है। बॉदे की डकैती मे, हमारे आदमियों की गोली से इसकी गरदन मे जो घाव लगा था उसका निशान मै अभी देख आया। अब जाते कहॉ हैं बचा! अच्छा, मै बदोबस्त करने जाता हूॅ, तुम खबरदार।"

"हजूर, यहॉ से नही जाने दूॅगा। आप बेफिक्र जाइए।"

"हॉ, अभी तो वह सोया भी है, बेखबर।"

"मैंने भी उसे ऐसा शीशे मे उतारा कि बेटा भॉप न सके। नाम-वॉम तो अनाप-शनाप बताया लेकिन इसमे शक नही कि राजा. .के यहॉ चुनाव का काम कर रहा है और अभी सात बजे की खबर लेगा।"

सहजानद लपके हुए टेलीफोन आफिस की ओर बढे, जो स्टेशन पर फर्स्ट क्लास टिकटघर से लगा हुआ है।

× × ×

"मै 'लाल पान का दहला'।"—फोन करने की भडरिया मे से सहजानंद फोन पर पुलिस सुपरिटेंडेट से ॲगरेजी मे कह रहे थे—"अच्छा—'अंगारा' आज हमारे चगुल मे आ गया है"—". ..."—"इटर वेटिंग मे सो रहा है"—" . .. "—"जल्दी सशस्त्र पुलिस की टोली भेजो, जो वेटिंग रूम के पिछवाडे तथा प्लेटफार्म के सब निकासो पर कडा पहरा रखे, (अगारा का हुलिया बताकर) इस हुलिए का आदमी निकल न जाय। गिरफ्तार तो वह वेटिग रूम मे ही हो जायगा, क्योकि उसे कोई धोखा नही है।"—".. . "—"हॉ,

सारा प्रबध पंद्रह मिनट के भीतर करो ; और, तीन पिस्तौलवाले इन्सपेक्टर सादे कपडे मे, प्लेटफार्म पर वेटिंग रूम के आस-पास बने रहें। मेरा इशारा पाते ही उसे बेक़ाबू कर ले।"—".. .. .."—"हॉ, ठीक"—"... . .. "—"नहीं ; मै चाहता हूॅ कि दिन निकलने पर गिरफ्तारी हो कि लोगो को मालूम हो जाय और मै अलग का अलग रहूॅ। तब तक मेरे भक्तो का एक दल आ जायगा (हॅसते हुए) और मै उसमे सम्मिलित हो जाऊॅगा।"—".... ...."—"अच्छा जल्दी।"—".. ......" "हॉ, परसों शाम को।"—". .... ." "ठीक"........

अब स्वामी-स्वरूपधारी लपककर प्लेटफार्म के पुलिस रूम मे पहुॅचे। वहॉ के 'नायक' ने उन्हे फौजी सलाम किया और आदेशानुसार तीन ज़वानो के साथ, सादी पोशाक मे, वेटिंग रूम के आसपास तैनात हो गया। वह हथकडी से लैस था।

(५)

सहजानंद रूपधारी के बढ़ जाने के कुछ मिनट बाद वेटिंग रूम-द्वार पुनः खुला। दौलतअली की टकटकी उसी ओर लगी थी। उसने फैज़ाबादवाली अल्पवयस्का को निकलते देखा। अलवान मे लिपटी-सिमटी-सी वह तेज़ी से बाहर हुई।

"ऐसी सरदी मे बाहर।"—'परमानंद' ने आत्मीयता जोडते हुए, कोमल कंठ से अपना आश्चर्य जताया।

"हॉ, हम लोग नित्य इसी समय खुले मे टहलती हैं। अतएव भीतर दम घुटने लगा था।"

"अच्छा ! आप लोग कहाँ ?"

"मै कन्या-गुरुकुल इंद्रप्रस्थ में पढती हूँ। छुट्टियो के बाद वहाँ लौट रही हूँ।"—कहती हुई युवती आगे बढ गई और निश्चिंतता से टहलने लगी।

उन दिनों एक गाडी लखनऊ से सीधे दिल्ली के लिये प्रायः आठ बजे सवेरे छूटा करती थी।

प्रबध करके लौटते हुए गुरुघटाल ने इस मूर्ति को देखा। एक क्षण के लिये ठिठककर उन्होने इसका निरीक्षण किया और वेटिंग रूम के द्वार पर पहुँचे।

"वही फ़ैज़ाबादवाली लौंडिया है। अपने कालिज में रोज़ सवेरे टहलती है। वही, यहाँ भी पॉव खुजाने लगे थे"—दौलतअली ने खडे होकर उन्हे सूचना दी और वह पुनः वेटिंग रूम में प्रविष्ट हुए, चारों ओर निगाह दौडाई। युवक वैसा ही बेख़बर पडा हुआ था। तारा की बुआ भी सो गई थीं। और सब ज्यो का त्यों था। वह अपनी आराम कुर्सी पर पुनः ऊँघने लगे।

दो-तीन मिनट बाद तारा भी भीतर आ गई और अपनी अटैची खोलकर कुछ रखने निकालने लगी। कुछ क्षण इसी प्रकार बीते। उसने फिर बिस्तर पर ढासना लगाया किंतु, जान पडता था, उसे कल न पडी, क्योकि पॉच-सात मिनट बाद वह पुनः बाहर निकलकर धीरे-धीरे टहलने लगी। दौलतअली इस बार उससे न बोला, केवल एक चलती-सी निगाह डालकर उसका टहलना देखता रहा। आसपास कई आदमी मटरगश्ती-सी कर रहे थे। उन्होंने भी कुमारी को देखी-

अनदेखी कर दिया। वह दूर तक इधर से उधर टहलती रही। यों कोई आठ-दस मिनट बिताकर, वह पुनः कमरे में लौट आई; अपनी साड़ी, अँगोछा और अटैची उठाई तथा स्नानागार को चली गई।

इसके कुछ पूर्व 'अगारा' उठ चुका था और तनिक देर के लिये बाहर चला गया था।

"आप तो देर तक सोनेवाले थे न ?"—दौलतअली ने जिज्ञासा की।

"चाहता तो था लेकिन आदत नहीं है।"

"मैं भी नहीं सो पाया। भला प्लेटफार्म पर कहीं नींद आई है।"

"ख़ैर, मेरी तबीयत तो इतने से ही हरी हो गई। अब चलूँ तैयार होकर अपना काम देखूँ।"—कहता हुआ युवक पुनः भीतर चला आया। तारावली के स्नानागार में जाने के कुछ ही क्षण बाद वह बेग में से बदलने के लिये कपड़े निकालकर स्नानागार की ओर चला।

उसी क्षण सहजानंद फिर बाहर निकले—"दौलतअली, अब वह नहाने गया है। नहाते ही बाहर निकलेगा। बस यही मौक़ा है।"—उन्होंने सहेजा—"अब, तुम जाकर कानपुरवालों का स्वागत करो। कार्रवाई तो गेट पर होगी।"

सूर्योदय के कुछ पहले, एक उदासी की तरह, घना कुहरा छा गया था। उससे घिरकर प्लेटफार्म पर की बिजली-बत्तियाँ धूमिल पड़ गईं और मेघाच्छन्न तारों की तरह टिमटिमाने लगीं। सहजानंद निर्लिप्त मस्ती के साथ उस कुहरे में टहलने लगे, मानो उसी के साथ अभी हिमालय की चोटी से उतरकर आए हों। दौलतअली कानपुर प्लेटफार्म पर चला गया। आसपास इधर-उधर छिटके हुए कुछ व्यक्तियों को

देखकर कोई गुमान भी न कर सकता कि, वे एक मतलब से यहाँ हैं।

सहजानद वस्तुतः सी० आई० डी० के एक बडे कुशल पदाधिकारी, सरदार लाभसिंह, पजाबी हैं। युक्तप्रात मे बढते हुए क्रातिकारियों की जड उखाडने का उन्होने बीडा उठाया है और इसी की सिद्धि के लिये गैरिक धारण किया है। उन्हे अपने कार्य मे क्या सफलता मिली है सो तो समय ही बतावेगा, किंतु इसमे सदेह नही कि वह और उनका विश्वस्त तथा चलतापुर्जा सहकारी दौलतअली जान पर खेलकर अपने काम मे प्रवृत्त है।

'अगारा' यहाँ का एक बडा विकट क्रातिकारी है। यह वही लाले है। कानपुर मे कालेज-प्रवेश करते ही इसका साथ वहाँवाले 'अग्निमडल' के नौजवानों से हो गया, जिसके कारण इसका पढना और घर ही नही छूट गया, पिता की इटर कालेज की प्रिंसिपली की आशा और अर्ध-सरकारी नौकरी की हृदय-हीनता से बची-खुची देशभक्ति भी जाती रही।

करबिगवाँ ट्रेन डकैती, बाँदे के सरोहा कसवेवाले लबरदार के घर की भीषण लूट आदि मे 'अगारा' का प्रधान हाथ रहा है। कई अफसरो की हत्या का भी वह ज़िम्मेदार है। तथापि, आज तक वह स्वतत्र है क्योंकि, उसमे जैसी ढिठाई और साहस है, वैसी ही शारीरिक और मानसिक फुर्ती भी। बाँदे की लूट मे पुलिस हक्का-बक्का-सी खड़ी थी और 'अगारा' लूट का सचालन कर रहा था। अत मे जब पुलिस को 'राम, राम' करके चलने लगा, तो सब-इन्स्पेक्टर ने पीछे से उस पर पिस्तौल का वार किया। गोली उसके गरदन मे लगी, किंतु श्वास-नलिका को दरेरती हुई निकल गई।

'अगारा' त्रुटिमात्र के लिये तो लडखडाया , क्योंकि वह अनचित्ता था। किंतु साथ ही वह—हॉ, वही देखने मे नाज़ुक छोकरा—चीते की तरह उस अभागे दारोगा पर टूट पडा। जहॉ दारोगा के हृदय मे अगारा को धराशायी कर देने की सुखद कल्पना उठ रही थी, वहॉ इस अतर्कित विपत्ति और उसकी तीव्र गति से बेचारा विजृंभित रह गया और आक्रमण कारी ने उसके हाथ से पिस्तौल ही नही छीन लिया, बल्कि उसको ही उसका निशाना बनाता हुआ ओझल हो गया।

वारट और इनाम की घोषणाऍ बेकार हुई। घाव ठीक हो जाने पर 'अंगारा' बनारस और जौनपुर मे बना रहा, तथा अपने बाहरी जीवन का रग ऐसा बदल दिया कि कोई भॉप न सका। किंतु इनाम और राजसम्मान के लालची दल का काम भी जारी था , ख़ासकर लाभसिंह के आ जाने से बहुत चमक उठा था। अत मे लाभसिंह के एक मुख़बिर ने, जिसने अयोध्या स्टेशन पर उनके पॉव छुए थे, दो एक दिन पहले अगारा का कुछ आभास पाकर तार से उन्हे सूचना दी और फ़ैज़ाबाद तक उसका पीछा किया। परिणामस्वरूप आज लखनऊ स्टेशन पर यह संयोग उपस्थित हुआ था।

(६)

ऐसे मौक़ों पर लाभसिंह सब बानक बनाकर स्वयं अलग रहते हैं—पद्मपत्रमिवांभसा—कि, रहस्य भेदन न हो जाय। इसी से उन्होंने दौलत-अली को उधर भेज दिया है और आप यहॉ टहलते हुए गतिविधि देख रहे हैं। लाभसिंह अपने विभाग के खुर्राट हैं। अब वह ऐसे हृदयहीन हो गए हैं, कि उल्लास के अवसर पर भी उनका स्पंदन नही बढ़ता।

तथापि आज ज्यो-ज्यों उनकी वाछित-सिद्धि का प्रत्याशित समय निकट आता जा रहा है, त्यो-त्यो उनके हर्ष की मादकता बढती जा रही है। फलतः अपनी इस समय की मस्तानी चाल के लिये उन्हे अभिनय करने की आवश्यकता नही रह गई है।

"फिर निकली"—लाभसिंह मन मे कुढे। उन्होंने देखा कि नहाकर अलवान मे दुबकी हुई युवती की मूर्ति वेटिंग रूम के बाहर आ गई है। पहले की तरह वह पुनः प्लेटफार्म पर धीरे-धीरे टहलने लगी अन्य तैनात व्यक्ति इस व्यापार से परिचित थे, अतएव उन्होंने विशेष ध्यान न दिया। मूर्ति कई बार कुहरे मे लुप्त और पुनः प्रत्यक्ष हुई, म्रियमाण की नाडी की भाँति।

अब 'अगारा' के भी स्नानागार से निकलने का समय हो गया था। गतिविधि देखने-समझने के लिये लाभसिंह पुनः वेटिंग रूम मे गए। वहाँ का हाल उन्होने प्रायः वही पाया जो उनके बाहर जाने के पूर्व था। लगभग सभी मुसाफिर सो रहे थे। जो एकाध जगे भी थे वे अपने ओढने से निकलना न चाहते थे। तारावली की बुआ भी सो रही थी। 'अंगारा' अभी तक लौटा न था। किंतु इतनी देर न लगनी चाहिए थी। सतर्क लाभसिंह के लिये यह चिंता का विषय था। वह स्नानागार की ओर गए।

ये स्नानागार एक बड़े कमरे मे, जो एक सँकरी दालान द्वारा वेटिंग-रूम के हॉल से संबधित है, पाँच-सात पतले-पतले घेरे हैं, जिनकी आदम-क़द से ऊँची दीवारो पर छत नही है। लाभसिंह ने एक स्नानागार का किवाड भीतर से बंद पाया। उन्होंने स्वभावतः सोचा कि 'अगारा इसी

मे होगा। किंतु बगलवाले स्नानागार का पल्ला बिल्कुल खुला हुआ था। ऐसा क्यों? लाभसिह के जासूसी दिमाग़ के लिये इस शका और कुतूहल का समाधान आवश्यक था। वह तुरत उसमे प्रविष्ट हुआ। पाया कि एक महिला ज़मीन पर, अर्धमूर्च्छित अवस्था मे पडी है। यह तारावली थी, जिसे वह समझ रहे थे कि बाहर टहल रही है। वह ताड गए कि दाल मे काला है। उनके पैर के पास ही एक चौपर्ता हुआ कागज़ पडा हुआ था; वहाँ जान-बूझकर छोडा गया दीखता था। उठाकर उन्होंने उसे खोला। पेंसिल से बडे-बडे अक्षरो मे जल्दी-जल्दी कुछ पक्तियाँ लिखी गई थी, जिन्हे वह लिखने वाले से भी अधिक तेज़ी के साथ पढ़ गए।

"पकडने चले हो? ख़ैरियत समझो कि जान नही ले रहा हूँ, छकाने मे ज़्यादा मज़ा है। नही तो, आज तुम दोनो के भेजे उडा देता। दो-दो पिस्तौल पास हैं। तुम्हारा मुख़बिर जब पीछे लगा तभी मै ताड गया था। मै ही तुम लोगों की आँख मे धूल झोंक रहा था, तुम लोग नही।"

'अंगारा'

कट्टर जासूस के पैर तले की धरती खसक गई। वह झपटा हुआ वेटिंग रूम के बाहर आया। देखा तो युवती की मूर्ति का वहाँ पता नहीं। डपटकर नायक से पूछा—"जो छोकरी यहाँ टहल रही थी, क्या हुई?"

"हुज़ूर, यही तो... "—नायक का गला घुटने लगा।

"'यही तो यही तो'—करता है?. तुम लोग पुलिस नही, भेड हो। कमबख्तो! वह 'अगारा' था जो हम लोगो के मुँह फूँककर कुहरे के संग उड गया।"—लाभसिंह ने अपना स्वर एकदम दबाकर गर्जन किया। 'नायक' पर पहाड टूट पडा।

"क्या मुँह देख रहे हो। खोजो, दौड़-धूप करो। कई मिनट बीत चुके, फिर भी शायद हाथ लग जाय। जा' ओ।"—आज्ञा देते हुए वह आगे बढे। कुछ दूर पर रेलवे पुलिस इन्स्पेक्टर सादी पोशाक मे टहल रहा था, उसे उन्होने अफसराना दबगी के साथ, बिना अपनी झेंप प्रदर्शित किए, थोडे मे कुल घटना समझाई तथा खोजने के लिये लपकाया और फुर्ती से पुनः स्नानागार मे पहुँचे, एव तारा की ओर प्रवृत्त हुए। माथे पर पानी देकर, सात्वनापूर्वक कुछ ही मिनटो मे उसे पूरी तौर पर होश मे ले आए।

पूछने पर रोते-रोते उसने अपना हाल इस प्रकार सुनाया—

स्नानागार की खूँटियों पर अपना अलवान और बदलने के कपडे टॉगकर उसने दातुन की। हाथ, पॉव और चेहरा साबुन से साफ किया। स्नान का उपक्रम कर रही थी, कि उसे फर्श पर आदमी की परछाईं दिखाई दी और उसने चौककर ऊपर सिर उठाया। देखा कि कनाती दीवार से रेलवाले युवक का छाती तक धड इस ओर लटक रहा है। दाहिने हाथ मे पिस्तौल है, जिसे तारा की ओर साधते हुए उसने कठोर स्वर मे धीरे से कहा—"हिली या मुँह खोला कि गोली टीके के पार"—साथ ही कलैया मार कर वह नीचे आ गया। तारा को मानो ठगमूरी लग गई हो। उसने युवक को केवल इतना कहते सुना—"सीधे से गले की चेन और चूडियॉ उतारकर दे दे"—किंतु वह अपने को और सम्हाल न सकी; कॉपकर धम से ज़मीन पर गिर पडी। एक बार उसकी कलाई मे पीडा-सी जान पडी। धुँधली चेतना मे, उसे स्वामीजी की सूरत दिखाई दी और बिलकुल ठीक हो जाने पर

उसने पाया कि उसके [illegible] हुए वस्त्र, चेन और चूड़ियाँ गायब हैं।

× × ×

लाभसिह पर क्या बीत रही थी, वही जानते थे, जाल लगा ही रहा, चिडिया उड गई। वह मन ही मन अपने को धिक्कारने लगे—'इतना बडा गुरुघटाल बनता है, किंतु एक लौंडे से कच्ची खा गया।'—दिमाग़ मे एक अजब उलझन पैदा हो गई थी। अस्तु, अब तो उनके लिये यही करना बाक़ी रह गया था, कि जल्दी से जल्दी घटनास्थल से रफू-चक्कर हो जायँ, जिसमे उनका 'भेख' कही से न उघरे। तारा को ढाढस बँधाते, सहारा दिए हुए वह उसकी बुआ के पास ले आए जो अभी तक सो रही थी। उन्हें जगाकर, जहाँ तक संभव था सुधार-सँवारकर यह दुर्वृत्त सुनाया। अबला माथा पकडकर धीरे-धीरे सिसकने लगी।

"आप सम्हलिए और लडकी को सम्हालिए, देखिए लोग जागने लगे हैं, व्यर्थ प्रपंच बढ़ेगा। मै पुलिस को ख़बर देता हूँ। घबराइए नही, आपके लिये कोई बात उठा न रक्खूँगा। हुँः, कैसे-कैसे नर-पिशाच हैं दुनियाँ मे, भगवान तेरी लीला।"—लाभसिह ने उन्हे सुनाया। चुपचाप स्वामीजी के पैर छूकर वह बिसूरने लगी। गुरुघटाल बाहर निकले।

× × ×

"लो, पुलिस से आने के लिये मै खुद कह आया, परमानंद कुछ लोगो के स्वागत के लिये गया है। अब अपने ही सामने रपट लिखवा-ऊँगा कि कोई गडबडी वा तुम लोगो को व्यर्थ कष्ट न हो। पुलिस को जानती ही हो। तिस पर से परदेस मे औरतो का मामला।"—

कुछ देर में लौटकर, गुरुडम के साथ सहजानद ने कहा। तारा सुस्त पड़ी थी और बुआ उदास बैठी।

"आप बड़ा कष्ट कर रहे हैं, महाराज!"—बुआ ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया।

"सेवा तो हमारा व्रत है, माई!"—बाबाजी कुछ और कहा चाहते थे कि तीन व्यक्तियों के साथ परमानद प्रविष्ट हुआ। इनमें से एक सेठजी थे जिनके पेट ने उनके शरीर से चार अगुल आगे चलने का नियम बना रक्खा था, और यदि कोट के बटन न रोकते रहते तो शायद वह कुछ और आगे बढ़ा रहता, तो भी वह प्रति क्षण उन बटनों से जूझ रहा था। सिर पर मैली-सी पगड़ी, कंधे पर फिरोजी रंग का चटकीले कामवाला दामी शाल। जान पड़ता था कि लक्ष्मी की पूरी कृपा देखकर, सुरुचि की देवी ने उनसे मुँह मोड़ लिया है। अन्य दो महाशय रोएँदार टेढ़ी टोपी, मखमली कफ-कालर के ओवरकोट, चूड़ीदार पाजामे और पम्प-शू से चुस्त-दुरुस्त थे। इन धर्मोद्धारकों के तन पर का एक-एक सूत विदेशी था।

स्वामीजी उनकी ओर बढ़े। आगतुकों ने लपककर उनके चरण छुए, किंतु अन्यमनस्कतापूर्वक आसीस देकर वह परमानन्द से खेद और उद्विग्नतापूर्वक कहने लगे—"परमानद! यहाँ तो एक काड हो गया। रेल में जो लड़का तुम्हारे बग़ल में बैठा था, इस लड़की के (इगित करते हुए) गहने-कपड़े छीन-छानकर चपत हो गया; अभी-अभी।

"अरे कैसे?"—चारों का कुतूहल एक साथ पूछ उठा।

इतने में पुलिस आ पहुँची और उसी के रपट लिखने में इन जिज्ञा-

सुओ ने समाचार जान लिए। कहना न होगा कि रपट मे 'अगारा' एक अनजान उचक्का क़ायम किया गया तथा स्वामीजी यथासभव, परदे की ओट मे रखे गए कि न तो वास्तविक बात फूटे, न मामला बढने पावे जिसमे आगे के चक्र-सचालन मे किसी प्रकार की बाधा न उपस्थित हो।

मामला रफा-दफा करने मे एक और बात ने पुलिस की पूरी सहायता की। कानपुर के सेठ साहब तारा की कदर्थना पर इतने विगलित हुए, कि उन्होने अपने गले से सोने की तेरह तोलेवाली मोटी एकलडी सिकडी उतारकर उसे पहना दी। बुआ-भतीजी की एक न चली। सेठ अड गया कि मै इसे धर्म की बेटी समझता हूँ; कौन मुझे रोक सकता है?

पुलिस 'अगारा' का वेग, धुस्सा और स्नानागार खुलवाकर, कपडे ले के चलती बनी। स्वामीजी अपने धर्म-चुस्त भक्तो के सग अपनी धुन मे प्रवृत्त हुए।

सारी घटना से उन महिलाओ को यदि कोई अडचन हुई, तो इतनी ही कि इस बीच उनकी ट्रेन निकल गई, अतएव उन्हे कानपुर जाकर तीसरे पहर की एक्सप्रेस पकडनी पडी। दौलतअली उन्हे सवार करा आया।

(७)

उस दिन पुलिस 'अंगारा' का कोई विशेष पता न पा सकी—प्लेटफार्म के पश्चिमी छोर पर तारा के कपडे, जिन्हे वह ओढ-पहनकर गया था, मिले और कुछ दूर आगे, लाइन पर काम करनेवाले एक बेलदार ने

बताया कि अद्धा कमीज और शार्ट पहने एक युवक तेज़ी के साथ उधर से गुजरा था, जिसे उसने कोई रेलवे अफसर समझा था, बस।

किंतु सात महीने बाद वह पुलिस के चगुल मे पड गया। उस समय तक उसके अपराधो की तालिका और बढ चुकी थी। गिरफ्तार होते-होते उसने दौलतअली को अपने पिस्तौल का शिकार बनाया था और लाभसिंह को साघातिक रूप से घायल किया था, जिसके परिणाम-स्वरूप डाक्टरों को उनका दहना हाथ काट देना पडा था।

× × ×

बात पुरानी पड चली। भले ही साल मे एक दिन 'अगारा-दिवस' की मनाही और उसे मनानेवालो की गिरफ्तारी की नौबत आती हो ; फिर भी, बात पुरानी पड चली।

किंतु कुमारी तारावली के लिये जीवन की दो घडियाँ ज्यो-की-त्यो टटकी बनी हैं ; एक तो चुनार मे स्याही फैल जानेवाली, दूसरी लखनऊ के वेटिंग रूमवाली—

लाभसिंह ज्यों ही पहली बार वेटिंग रूम से बाहर हुए, 'अगारा'—जिसे उन्होने गहरी नींद मे सोता छोडा था, सन से उठ खड़ा हुआ और दबे पॉव झपटकर तारा के पास पहुँचा। बुआ के चरण छूकर, अपने वक्षपर अगुली रखते हुए उसने तारा से पूछा—"पहचाना ? तब का लाले अब का 'अंगारा'।"

"सदेह तो ट्रेन से ही कर रही थी। बुआ से कहा भी था। अब बोली सुनकर तो शक ही न रह गया।"—तारा ने प्रसन्न होकर उत्तर दिया।

बातों का समय नहीं है। पुलिस पीछे लगी है। यह बाबा और इसका चेला खुफिया का आदमी है। बचाना होगा। तुम पर रेफ न आने पावेगा। स्वीकार है ?"—अगारा ने एक साँस मे धीरे से प्रश्न किया।

"तैयार हूँ।"—तारा को लाले का पूरा भरोसा था।

"सुनो, मै पुनः घोर-निद्रित हो जाता हूँ। तब तुम थोडी-थोडी देर पर पॉच-पॉच, सात-सात मिनट के लिये बाहर जाकर टहलो। कोई पूछे तो कहो कि गुरुकुल की आदत है। तुम्हें मेरा पता न हो, परतु मुझे तुम्हारा है। इद्रप्रस्थ कन्या-गुरुकुल मे पढती हो। अच्छा, फिर आकर मेरे जागने की प्रतीक्षा मे रहो। उसके कुछ मिनट बाद स्नानागार मे जाकर भीतर से बद कर लो और सात मिनट तक स्नान न करो। यदि सात मिनट मे कोई बात न हो तो नहाकर चली आओ। और ब्योरे तुम आपही देख लोगी। ज़रा भी भूल न करना, घबराना मत। नही न ?"—लाले ने जल्दी-जल्दी सिखाया।

तारा को ऐसा लगा मानो वही आठ-दस बरस पहले का लाले उसे उपद्रव का पाठ पढा रहा हो और वह मत्र की भॉति एक-एक अक्षर ग्रहण कर रही हो। उन्ही दिनों की तरह, बिना कुछ कहे, गरदन हिलाकर उसने स्वीकृति दे दी। तुरत 'अगारा' अपने कोच पर लबा हो गया।

बुआ को धडकन होने लगी। सोचने लगी—'ये आजकल की लडकियाँ....... देखो, क्या बीतती है ......'—उन्होंने अपनी शका

तारा से कही, किंतु उसने इस आत्मविश्वास के साथ उनका समाधान किया कि वह निश्चिंत हो गई।

× × ×

तारा ने स्नानागार भीतर से बद किया। उछलते हुए हृदय से वह आगे के क्षणो कीप्रतीक्षा करने लगी। कोई पॉच मिनट बाद उसके पूरब का स्नानागार बद हुआ। अगले आधे मिनट के भीतर कनाती दीवार पर से लाले वहॉथा।

"अभी तक तो सब ठीक चल रहा है"—वह सायॅ-सायॅ बोला।

"भगवान मालिक है !"—तारा ने भी वैसे ही दबे गले से, असीम आत्मीय-चिंतापूर्वक उत्तर दिया।

"सबके ऊपर। अच्छा, लाओ बदलनेवाले वस्त्र। चूडियॉ और सिकड़ी भी। मेरे चले जाने पर तीन मिनट तक पल्ला बद रखना। फिर अर्द्धस्नात वेश मे खुला छोडकर मूर्छित बन जाना। पूछने पर लूटे जाने की बात कहना। यदि मै बीच मे पकड़ भी लिया गया, तो इससे मुझ पर कोई नई आफत न आवेगी, कितने ही सगीन जुर्म सिर पर हैं। रहा यह भेद—सो मुॅदा रह जायगा।"—वह सपाटे से कान के पास कह गया।

तारा ने अपने गहने, कपडे और ओढ़ना सोल्लास दे दिया। उसे ऐसी प्रतीति हुई कि आज उन वस्तुओ की सार्थकता हुई। 'अगारा' ने चटपट उन्हे अपने शर्ट-निकर पर पहन के गहने जेब के हवाले किए।

"यह बाबा के लिये"—उसने एक चौपता पुर्जा ज़मीन पर फेका और—"अच्छा तारा . ..."—कहते हुए पहले की भॉति उसके दोनों हाथ अपनी मुट्ठियो में दबाकर धीमे-धीमे झकझोरा। तनिक देर वे

परस्पर भर-आँख देखते रहे, खोए-से। किंतु वैसे ही मे प्रत्यक्ष को स्वप्न बनाता हुआ, वह उड गया।